भक्त हृदय के उद्‌गार..

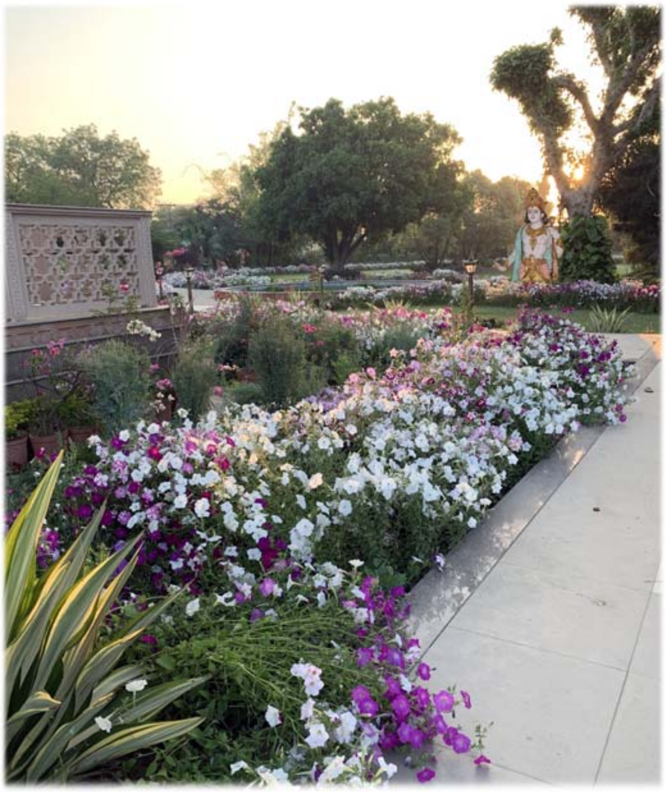

किस मुँह से हे राम मेरे, तेरे द्वार पे आऊँ मैं।
प्रेम नहीं हिय में मेरे, क्या तुम पे चढ़ाऊँ मैं।।

दो आँसू बह रहे मेरे, निज निर्धनता पर राम।
वही चढ़ाऊँ चरणन में, कर जोड़ी करूँ प्रणाम।।

आँसू मेरे ले ले प्रभु, मुझे भक्ति का दे दान।
श्वास श्वास पे प्रभु मेरे, लिखा हो तेरा नाम।।

जो फूल जब भी देखूँ, उपवन में मेरे राम।
कर से छू भी न पाऊँ, वह सब हैं तेरे राम।।

क्या लाऊँ तोरे चरणन् में, चढ़ावन को मेरे राम।
कौन गीत कहो गाऊँ स्वामी, आवाहन को तेरे राम।।

इक बार प्रभु तू आकर के, मुझे प्रेम का दे वरदान।
चरण में तोरे लिपटी रहूँ, गुण गाऊँ तेरे सर्व महान।।

- परम पूज्य माँ

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, द्वितीय अध्ययन ९/२६

अनुक्रमणिका

१. *भक्त हृदय के उद्‌गार..*

३. *सूरज को घने बादलों में भी कोई कहाँ तक छुपा सकता है..*
श्रीमती पम्मी महता

६. *हर काज क्रिया जो तन यह करे, राम कहे ही होती है..*
'मुण्डकोपनिषद्', द्वितीय मुण्डक १/८

१०. *स्वतंत्रता*
प्रस्तुति - पूज्य छोटे माँ

१५. *सत् में चित्त टिकाव*
परम पूज्य माँ से 'पिताजी' के प्रश्नोत्तर

२०. *पहली मुलाकात*
श्रीमति उमा दत्त

२२. *अनुभव अपना होना है*
प्रस्तुति - विष्णु प्रिया महता

२६. *आन्तर दर्शन*
श्रीमति शान्ता देवी

२९. *यज्ञ-शेष*
श्रीमति शीला कपूर

३२. *समाधि स्थित तथा स्थितप्रज्ञ..*
श्रीमद्‌भगवद्‌गीता -
भगवद् बाँसुरी में जीवन धुन, अध्याय २/५४-५५

३८. *अर्पणा आश्रम*
समाचार पत्र

सम्पादक की ओर से

गद्य में प्रस्तुत सभी लेख साधकों के प्रश्नों के उत्तर में परम पूज्य माँ द्वारा प्राप्त सत्संगों पर आधारित हैं और संकलन-कर्ता की निजी समझ के अनुकूल हैं। काव्य की पंक्तियाँ पूज्य माँ के मुखारविंद से प्रवाहित दिव्य प्रवाह का अंश हैं; जिसे सुश्री छोटे माँ ने लेखनी बद्ध किया है। अपनी पूर्ण सामर्थ्य के अनुसार उसे ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुति में किसी भूल के लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं।

सम्पादक : *पूनम मलिक*
सह सम्पादक : *श्रीमती साधना पाल*

पता : अर्पणा आश्रम, मधुबन, करनाल
१३२ ०३७, हरियाणा, भारत

श्री हरीश्वर दयाल, अर्पणा ट्रस्ट, मधुबन, करनाल १३२ ०३७ ०१, हरियाणा द्वारा जून २०२२ को प्रकाशित तथा सोना प्रिन्टर प्राईवेट लिमिटेड, एफ -८६/१, ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया फेज़-I, नई दिल्ली ११० ०२० द्वारा मुद्रित

सूरज को घने बादलों में भी
कोई कहाँ तक छुपा सकता है..

श्रीमती पम्मी महता

कैसा अनूठा व विलक्षण जीवन है आप माँ प्रभु जी का! जीवन में आप सद्‌गुरु वेश में मुझे मिले.. कितनी अनजान थी कि यह जीवन जो हम जी रहे हैं (यानि जीव जगत में) यह अंधकारमय है, जहाँ संग, मोह, माया, अहंकार व स्वार्थ है। यक़ीन नहीं हो रहा था अपने आप पर, मगर जब जीवन में सद्‌गुरु प्रवेश कर जाते हैं तभी रोशनाई का आभास होने लगता है.. क्योंकि सच्चे व सुच्चे गुरु ही दिशाविहीन को दिशा देकर नवाज़ने लगते हैं! कितने प्यार से आंतर में धकेल कर आपने मेरी ही सत्यता का परिचय कराना शुरु किया मुझे।

आपके प्रथम मिलन में ही कुछ ऐसी कशिश थी कि आप में विश्वास पैदा हो गया। अरे! यह कौन है, जो मुझसे ज़्यादा मुझे जानते हैं? बहुत हैरतज़दा थी। मगर जब आपके प्यार की दहलीज पर आप ही से लिवाई गई.. तो शुबहा एक बार भी नहीं हुआ, बल्कि आपको आगे से आगे जानने की जिज्ञासा ने जैसे मुझे चहुँ ओर से घेर लिया। कौन हैं ये, जो मेरे अपने आप बन कर मुझे अपने दिव्य दर्शनों में लिवा ले गये हैं.. जहाँ केवल रोशनाई ही रोशनाई है! जहाँ जीने की कला का सैलाब बह रहा है और उसी में डूबे रहने की चाहत से प्रेरित करी, कैसे मुझे खींचे लिये जा रहे हैं!

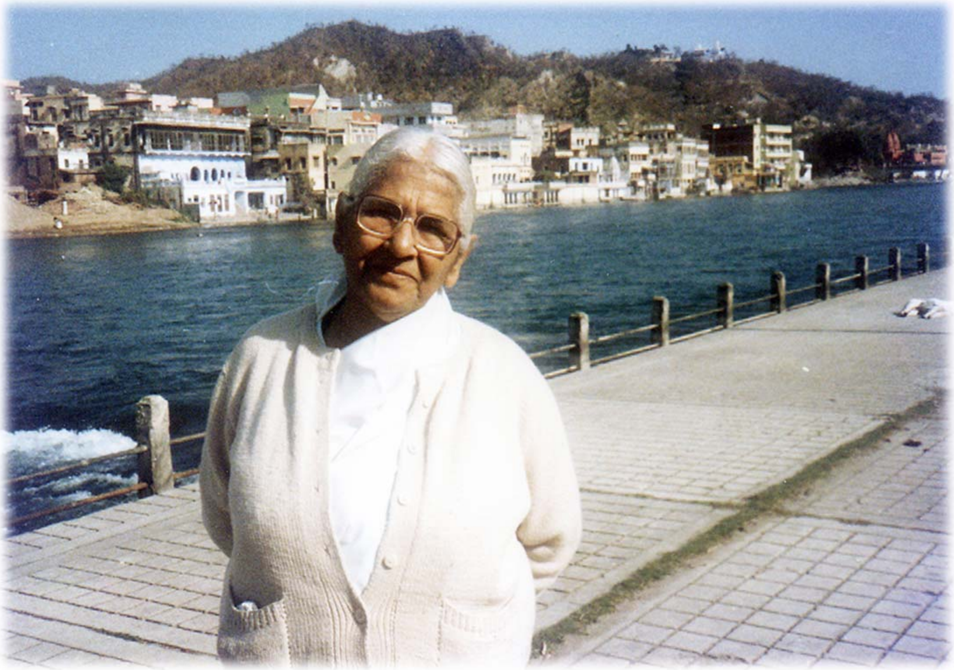

परम पूज्य माँ

अल्लाह क़सम, यह मनःस्थिति आप माँ ने ही प्रसाद रूप मुझे दी.. कोई कैसे इतना सुन्दर हो सकता है! मंत्र-मुग्ध सी, आप की इस सुन्दरता का आभास मुझे आप ही से जोड़े हुये था और बड़ी ही विचित्रता की अभिव्यक्ति के अद्‌भुत व विलक्षण दर्शन हो रहे थे। कब सहर शब में और शब सहर में ढल जाती.. पता ही नहीं चलता।

आप, आप और आप ही मेरे अंग अंग में बसते जा रहे थे। बाप रे, इतना आकर्षण! आँखें मूँद कर आप ही आपको निहारती चली जाती। कोई कैसे आपकी नींद उड़ा सकता है.. इस एहसास की क़र्ज़दार हो गई.. क्योंकि आपकी इस देन ने तो जैसे मुझे पूर्णातया समेट कर आपकी आग़ोश में ला धरा, जहाँ से इतनी पावन प्रेम गंगा का प्रवाह निरन्तर बहा ही चला जा रहा है।

उसी प्रीत का सदक़ा, उसी से मैं आपकी करुण-कृपा से पुष्टित व पल्लवित होती चली गई। इसी लिए आपसे जहाँ से भी एक बार निकाल ली जाती, फिर वहाँ लौटने की इच्छा वहीं दफ़न हो कर रह जाती.. क्योंकि आपकी इस अनूठी व अद्‌भुत प्रीत को चख लेने के बाद मन कहीं और जाने की गुस्ताख़ी कर ही कहाँ सकता था!

यह मेरी करनी नहीं थी.. इसका श्रेय भी आप ही की अमानत थी.. है.. और सदा रहेगी! धन्य भाग्य तो माँ मेरे थे जो आपकी कृपा दृष्टि की तुष्टि मुझ पर निरन्तर व इतने प्यार से होने लगी.. मैं एक निमानी सी, अबोध सी व बहुत ही सादी लड़की थी, जिसपे आपका नज़रेकरम हुआ और आप स्वयं को अपने हर पहलू से इस क़दर अवगत कराने लगे जैसे आप मुझे अपना आप जानी मुझसे अपनी धरोहर बाँट रहे हों!

जितना जितना आप देते, मेरा हृदय दामन आप ही से विस्तार पाता गया और आप अपनी धरोहर को मुझमें इस क़दर प्यार से समेटते ही चले गये कि आपको सिजदे में धर बड़ी ख़ामोशी से सिजदा देती ही चली गई। वाह! सद्गुरु माँ प्रभु जी वाह! कैसा अनूठा जीवन प्रसाद देते हुये आपने मुझसे कुछ भी नहीं माँगा.. कभी भी!

परम पूज्य माँ के साथ आश्रम के अन्य सदस्य

इतना निःस्वार्थ प्रेम.. इतनी निःस्वार्थ निज दैवी सम्पदा को देते हुये आपका हाथ कभी पीछे नहीं हुआ। अपने समेत अपनी हर देने की अदा को इतने क़रीब से दिखाकर, अपने दिव्य दर्शनों से भरपूर करने में कोई क़सर नहीं छोड़ी। सच माँ, बहुत ही कृतज्ञ हूँ जो आपने इस निमानी को कृतार्थ करते हुये कोई क़सर नहीं छोड़ी। यही दुआ करती हूँ, यारब, सारी सृष्टि को इतना नसीब वाला बना लें.. जो आपकी हर देन को प्रेम, श्रद्धा व भक्ति से उठा कर गौरवान्वित महसूस करें! आमीन।

आप सच ही युग पुरुष हैं माँ! युगों तक आपकी महिमा का सामगान जीव जगत गाता रहेगा.. देर सबेर हो सकती है.. मगर निष्ठाओं को बदल पाना जीव के हाथ में नहीं। इसका आधार और कोई नहीं आप स्वयं हैं माँ! यथार्थता को कोई भी नहीं झुठला सकता, न ही झुठला पाया है। सूरज को घने बादलों में भी कोई कहाँ तक छुपा सकता है.. उसकी प्रकृति है कि वह बाहर आ जायेगा। इसी लिए मैं कभी भी निराश नहीं होती.. सारी कायनात आप ही के आशीर्वाद व आपकी कृपा से वह सुबह ज़रूर देखेगी!

जो सगुणवेश में हमारे लिए अवतरित होते हैं.. उनके क़दमों का सदक़ा ही तो वह रहगुज़र बनती है, जिसपे युगों तक चलते हुये आत्मा परमात्मा में जा विलीन हो जाती है। भगवान जी सभी का भला करें! हे माँ, आपका प्यार हम सदा बाँटते रहे एक दूसरे से! हरि ॐ ❖

हर काज क्रिया जो तन यह करे,
राम कहे ही होती है..

गतांक से आगे-

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात् सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त।।

मुण्डकोपनिषद - २/१/८

शब्दार्थः

उसी परमेश्वर से सात प्राण उत्पन्न होते हैं तथा अग्नि की काली-कराली आदि सात लपटें; सात विषयरूपी समिधाएँ, सात प्रकार के हवन तथा सात लोक-इन्द्रियों के सात द्वार उसी से उत्पन्न होते हैं; जिनमें प्राण विचरते हैं। हृदयरूप गुफा में शयन करने वाले ये सात सात के समुदाय उसी के द्वारा सब प्राणियों में स्थापित किये हुए हैं।

तत्व विस्तारः

सप्त प्राण सों पंच प्राण, राम नहीं रे कहते हैं।
सीस में सप्त इन्द्रिय द्वार, की समझूँ रे कहते हैं।।१।।

विषय प्रकाशित जो करे, उन द्वारन् की कहते हैं।
द्वौ नयन दो कान हैं, मुख्र द्वौ नासिका कहते हैं।।२।।

गर चाहे तो यूँ समझो, त्वचा नेत्र और कान कहें।
संग में रसना वाणी मन, और सप्तम् वह प्राण कहें।।३।।

इन्द्रिय गण यहाँ प्राण कहें, अग्न शक्ति को रे कहें।
सप्त प्राण जो ज्योति दे, सप्त अग्न है वह रे कहें।।४।।

सप्त विषय इन्द्रिय समिधा, अग्न बल सम्पर्क करें।
सप्त छिद्र सों वृत्ति बढ़ी, जिस शक्ति से निकल पड़े।।५।।

क्या समझूँ ओ राम मेरे, उसको ही रे अग्न कहें।
विषय अनुसंधान ही, इन्द्रियन् के बल से होये।।६।।

श्रवण शक्ति स्पर्शन् भी, दृष्टि भी रे संग कहें।
रसना गंध वाणी की, मनोशक्ति भी संग भये।।७।।

सप्त अग्न जो कह आये, चाहो उसको तुम कह लो।
काली कराली मनोजवा, सुलोहित धूम्र वर्ण कह लो।।८।।

संग में स्फुलिंगनी कहो, प्रकाशित कर देवी कहो।
सप्त जवाल यह अंग अंग की, सप्त अग्न तुम इसे कहो।।९।।

समिधा विषय को कहते हैं, जो यह अग्न रे भोगे है।
इन्द्रिय गोलक शक्ति के, संयोग सों ही तो भोगे है।।१०।।

शक्ति गोलक पर चढ़ी, निज विषय ही ध्याये है।
हर शक्ति का विषय ही तो, समिधा रे कहलाये है।।११।।

विषय रुप सप्त समिधा, इन्द्रिय ईंधन की रे कहो।
ध्वनि गंध रूप रस, शब्द स्पर्श और वृत्ति कहो।।१२।।

इन्द्रिय अग्न आहुति बस, बाह्य विषय ही होता है।
विषय रूप सप्त समिधा, इन्द्रिय ईंधन होता है।।१३।।

होम हुआ सम्पर्क हुआ, सप्त विषय इन्द्रिय गण सों।
सप्त ग्रहण शक्ति का, सप्त ग्राहक विषयन् सों।।१४।।

इन्द्रिय गण को प्रथम कहा, फिर शक्ति को कह दिया।
भोग विषय को फिर कहा, सम्पर्क को ही कह दिया।।१५।।

गोलक कहे वृत्तियाँ कहीं, वृत्ति विषय भी कह दिये।
बाह्य वृत्ति विषय सम्पर्क, सप्त होयें रे कह दिये।।१६।।

सप्त लोक वासी, सप्त इन्द्रिय गण को कह दिया।
सप्त लोक इन्द्रियन् के, अधिष्ठान देव को कह दिया।।१७।।

प्राण धाम रे इन्द्रिय धाम, में संचार रे करते हैं।
यह ही वृत्ति रूप धरी, जग व्यवहार रे करते हैं।।१८।।

सुषुप्ति बेला लय बेला, हृदय में जाये शयन करे।
कारण तन रे वह ही है, उसमें जाये लय होये।।१९।।

पंच तत्व समुदाय वह, जन्म दे इनको परम ही है।
उचित जा स्थापित करे, जान ले वह परम ही है।।२०।।

हर वृत्ति रे हर इन्द्रिय, निश्चित काज रे करती है।
मनो अध्यक्षता में कह लो, राम कहा ही करती है।।२१।।

मन हिये का वासी है, जीवत्व भाव मन को कह लो।
भोक्ता पक्षी साधक भी, जो चाहो उसको कह लो।।२२।।

हर काज क्रिया जो तन यह करे, राम कहे ही होती है।
बार बार वह यही कहें, निश्चित ही रे होती है।।२३।।

ज्ञानी क्या अज्ञानी क्या, प्रेरित वह ही करता है।
कर्तृत्व भाव कहाँ रह सके, जाने जो राम ही करता है।।२४।।

कार्य कर्ता कर्मफल, उसको ही वह जान ले।
ज्ञानी अज्ञानी कर्म हैं, राम कर्म पहचान ले।।२५।।

अधिष्ठात्री देवी है वह, परम शक्ति वह ही है।
विभाजित वह ही होये है, कर्ता भी फिर वह ही है।।२६।।

सम्पूर्ण कर्म यज्ञ ही, देवता पे चढ़ायें हम।
अहम् रहित विधिवत है, अहम् सहित चढ़ायें हम।।२७।।

अहम् सहित जो कर्म किया, अविधिवत वह होता है।
अपावन यज्ञ रे जान लो, अहम् सहित ही होता है।।२८।।

जीवन ही इक यज्ञ भये, कर्तृत्व भाव गर न रहे।
सत्त्व सार तू जान ले, अहंकार गर न रहे।।२९।।

अहम् सहित जो कर्म करे, कभी पाप भये कभी पुण्य भये।
अहंकृत भाव से रहित कर्म, न पाप रहे न पुण्य भये।।३०।।

यही सुझाने को जानो, अनेक विधि वह कहते हैं।
हर कर्म है राम का, वा पे त्यजो रे कहते हैं।।३१।।

पूर्ण कर्म का कर्ता वह, कहें हृदय में वास करे।
देख गर रे मिलना है, हृदय जाये के मिल सके।।३२।।

हृदय गुहा में ही सब, सप्त अंग समाते हैं।
लय अवस्था वह ही है, प्रदुरता वहीं से पाते हैं।।३३।।

सूक्ष्म स्थूल का कारण वह, बार बार समझाते हैं।
अरे किसी विधि तो समझ ले, यह ही कहते जाते हैं।।३४।।

अहम् आवृत अखियाँ तोरी, तो ही समझ नहीं पाये हैं।
राहों में तोरी जान ले, अहंकार ही आये है।।३५।।

आन्तर समिधा वह ही है, बाह्य समिधा आप भये।
कर्म कृत कर्म वह ही है, कर्म प्रेरणा आप भये।।३६।।

प्रेरणा वह और प्रेरित वह, प्रेरक भी रे वह ही है।
बार बार वह यही कहें, देख सभी रे वह ही है।।३७।।

महा अग्न यह महायज्ञ, नित्य निरन्तर होता है।
पूर्ण जग का जान ले, इक परम ही होता है।।३८।।

सर्वप्रथम रे वह ही है, परम कर्ता वह ही है।
परम अधिष्ठान है वह ही, ईषण कर्ता वह ही है।।३९।।

इन्द्रिय द्वार उत्पन्न करे, इन्द्रिय धाम तन वह रचे।
इन्द्रियन् में शक्ति भरे, इन्द्रिय विषय भी आप भये।।४०।।

सम्पर्क प्रेरणा आप करे, आप में फिर समाये है।
कर्तृत्व भाव के कारण मन, तू समझ नहीं पाये है।।४१।।

१७-९-६१

स्वतंत्रता

प्रस्तुति - पूज्य छोटे माँ

अर्पणा पुष्पांजलि अंक अगस्त १९९५

हम भ्रम में दुनिया से आज़ादी माँग रहे हैं और
इसी बाह्य स्वतंत्रता की माँग ने हमें परतंत्र बना दिया है!

हम स्वतंत्र होना चाहते हैं, परन्तु यह नहीं जानते किससे। वास्तविकता तो यह है कि हम स्वतंत्रता को जानते ही नहीं। हम कहते हैं हम जो चाहें वही करेंगे। अब देखना यह है कि क्या अपनी इच्छा पूर्ति में जीना ही स्वतंत्रता है? यदि आँख खोल कर देखें तो यह इच्छा पूर्ति की चाहना आज़ादी नहीं है।

जीव इसी भ्रम में रह जाता है कि उसने सोच समझ कर निर्णय लिया है। सत्य यह है कि हमने अपनी ही प्रतिकार झंकार के कारण निर्णय लिया। हमने इस पर दृष्टि धरी ही नहीं कि हमारी मरज़ी ने क्या कर दिया.. उसने तो हमें अपने आपको देखने की भी स्वतंत्रता नहीं दी। हमने अपने मन और बुद्धि को नहीं देखा कि वह कैसे हैं, तन को भी नहीं देखा कि वह क्या करता है। मन अंधो की भाँति जहाँ चाहता है, हमें बलपूर्वक उड़ा कर ले जाता है।

मन से ही तद्रूप होकर हम कहते हैं कि यह हमारी मरज़ी है। हम कहते हैं 'मुझे यह पसंद है, मुझे यह पसंद नहीं है। मैं यह करूँगी, मैं यह नहीं करूँगी।' अब प्रश्न यह उठता है कि यह निर्णय किसने किया है? क्या हम स्वेच्छा से परिवर्तन करने को समर्थ हैं? वास्तविकता यह है कि हम अपनी पसंद को छोड़ने में असमर्थ हैं और हमारी पसंद अंधी हो गई है। सोचना यह है कि हमने जो निर्णय लिया है, क्या यह सच्चा है?

जो निर्णय देहात्म बुद्धि ने किया था, उस निर्णय को हम अपना निर्णय मान बैठे हैं। उसके साथ हमने अपने मन को भी मिला लिया है और कहना आरम्भ कर दिया है, 'यह निर्णय मैंने सोच समझ कर लिया है।' अब हम इसमें बंध गये हैं क्योंकि यह तो हमारा पुराना स्वभाव है। हम कहते हैं, 'हम यह खायेंगे, हम यह नहीं खायेंगे,' सत्यता यह है कि हम अपनी जिह्वा की रसना से बंध गये हैं। इसी प्रकार हम कहते हैं, 'मुझे अमुक व्यक्ति पसंद है; इस प्रकार के लोग पसंद है; ऐसे स्वभाव पसंद है', बस ऐसी बातों में हम बंधे हुए हैं।

ज़रा यह तो देखें - क्या हम अपने आपको जानते हैं? अपने को अपने दर्शन करने की तनिक स्वतंत्रता तो दे दें। हम भ्रम में दुनिया से आज़ादी माँग रहे हैं और इसी बाह्य स्वतंत्रता की माँग ने हमें परतंत्र बना दिया है। हम ने कहा कि हमने यह निश्चित किया और हम आप ही उस जाल में फंस गये! इसलिये हम अंधे हो गये हैं, इसी निश्चय में हमने प्राण भर दिये हैं तथा इसी में ही हम फंस गये हैं। अब यह ऐसी दृढ़ मान्यता बन गई है कि आयु पर्यन्त यह हमारे साथ चलेगी। एक आदत में फंस जाना ही अज्ञानता है। हम अपनी आदत के नौकर बन जाते हैं। जब तीनों स्तरों पर हमें आदतें पड़ जाती हैं तो हम पराधीन हो जाते हैं।

हम द्रष्टा बन कर जब दूर से देखते हैं तो समझ आती है कि आज हमने जो निर्णय लिया है, वह तो एक आदत ने लिया है। एक को अपने पर नियंत्रण की आदत पड़ गई तो वह अपने आपको नियंत्रण में रख सकता है। दूसरा ऐसे वातावरण में पला जहाँ उसे स्वेच्छा से जीवन व्यतीत करने का मौका मिल गया तो वह वैसा ही हो गया। यह तो केवल आदत का खिलवाड़ है।

आज़ाद तो हम तब होंगे जब हम अपने ही मन और बुद्धि की कोई बात भी नहीं मानेंगे। जब हमारे पास कोई ऐसे भाव ही नहीं होंगे, जिन्हें हम जिद्द के साथ पूर्ण करना चाहते हों, तभी हम दूसरे से स्वतंत्रता से बात कर सकते हैं; क्योंकि हमने अपने आपको कहीं बांधा नहीं।

हमारा स्वभाव है कि अपना काम करवाने के लिये हम दूसरे पर आधिपत्य जमाते हैं, उसे प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। यदि हमारा मान प्राप्त करने का इरादा न हो, हम सहज ही अपने कर्म बदल सकते हैं, हम अपना टांगा मोड़ सकते हैं।

जो अपनी चाहना पर बिक जाये, वह आज़ाद कैसा? हमारी चाहना ने ही हमें हथ-कडियाँ लगा दी है और हम अंधे हो गये हैं। क्या हम कभी अपनी विचारधारा को बिना रोक टोक देख सकेंगे और कह सकेंगे कि, 'सत्य निर्णय यह है.. इसमें मेरा अहंकार, मेरी

चाहना, हानि और लाभ कुछ भी राहों में नहीं आया, यह मैंने करना ही है, क्योंकि यह मेरा धर्म ही है.. हम तब ही आज़ाद होंगे, वरना हम आज़ाद नहीं'। शास्त्र एक ही बात कहता है, कि हम इतने आज़ाद हो जायें कि सब कुछ आज़ादी में देखें! आज हमने अपनी आँखों पर पट्टी क्यों बांध ली है? इस स्वतंत्रता में ही हम कह सकेंगे कि 'हे राम! जो आप कहते हैं, वही ठीक है। जो आपकी रज़ा है, वही ठीक है, जो हो रहा है, वही ठीक है। यह सब बंदे आपके हैं।'

हम शास्त्र की बात इसलिये नहीं मान सकते, क्योंकि हम आज़ाद नहीं। हमें कभी यह ख़्याल नहीं आया कि मैंने शास्त्र से यह सुना था और मैं करना भी चाहता हूँ, पर मैं क्यों नहीं कर सका? मेरे रास्ते में बंधन क्या है? अपने आप से यह प्रश्न तो पूछें और अपने मन को तो देखें.. बुद्धि को तो देखें..

प्रश्न यह उठता है कि जब हम बदलना चाहते हैं, जब हमें ज्ञान पसंद है, तब भी क्यों नहीं बदल सके? उस ज्ञान को लेने के लिये हम कई संतों के पास भी जाते हैं, पर बदले क्यों नहीं? हमने कोई बात सुनी, वह बहुत पसंद आई। पर हम उसे कर क्यों नहीं सकते? बाहर से तो हमें किसी ने रोका नहीं, किसी ने टोका नहीं, फिर गलती कहाँ हुई?

हम शास्त्रों की पूजा करते हैं, पढ़ते हैं, उसे बारम्बार दोहराते हैं, उन पर व्याख्यान भी देते हैं, परन्तु उनकी बात मानने के लिये हम आज़ाद नहीं हैं। बहुत सुंदर चीज़ें देखते हैं, परन्तु जीवन में उन्हें उतार नहीं सकते। हम स्वतंत्र क्यों नहीं हैं? अध्यात्म के रास्ते पर हमें बाहर से रोकने वाला कोई भी विघ्न नहीं है। यदि हमने अपने आपको भूलना सीखना है; हमने स्वयं झुकना सीखना है, यदि दूसरे के लिये जीना सीखना है, तो इसमें बाधा क्या है? ऐसा करने से हमें कौन रोक सकता है?

अपनी राह का बंधन तो हम आप हैं। मैं जग से नहीं हारी, जग ने तो मुझे कुछ नहीं कहा, उन्होंने तो मुझे हर पल अपनी ओर देखने का संकेत दिया! अच्छा कह कर अथवा बुरा कह कर! वहाँ पर तो सारी साधन सामग्री पड़ी है। वहाँ तो सुख ही सुख मिला, परन्तु मैं हारी हूँ केवल अपने से। किसी ने मुझे नहीं हराया, कोई मेरी राहों में नहीं आया।

इसका अभ्यास जीवन की साधारण परिस्थितियों में, साधारण समस्याओं में, साधारण ढंग से वर्तते हुए ही हो सकता है। सो दुनिया को छोड़ कर कहीं जाने की बात नहीं है। वहाँ से हमें जितना चाहिये, उतना हम सम्भाल लें, और बाकी जीवन तो भगवान के लिये दे दें।

जिन गुणों को हमने भगवान में पसंद किया है, वे गुण हम अपने जीवन में क्यों नहीं उतारते? उन महापुरुषों ने जो आदेश दिया है, उसका अनुसरण क्यों नहीं कर रहे? हम जानते हैं कि वे संत जन इस पथ पर चल कर लक्ष्य तक पहुँच गये, तो हम भी उनकी बात क्यों नहीं मान लेते? समझना यह है कि हम स्वतंत्र ही कब हैं कि मान सकें? क्रोधी अपने क्रोध से बंधा हुआ है; लोभी अपने लोभ से बंधा हुआ है। हर इन्सान 'मैं' के साथ बंधा हुआ है; उसकी वृत्ति 'मेरे' साथ बंधी हुई है। हम इन बेड़ियों में जकड़ गये हैं। यह

टूटेंगी कब? हम कब कह सकेंगे 'भगवान्! आपने जो कहा, लो हो गया!' फिर केवल आनंद में रहेंगे।

परम पूज्य माँ के साथ आश्रम के अन्य सदस्य

शास्त्र कहते हैं 'हे जीव! अखण्ड आनंद तो तेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।' हम बाह्य स्वतंत्रता माँगते हैं पर हम अपने आप से मारे गये हैं। हमें किसी दूसरे ने दुःख नहीं दिया, हमारे सारे दुःख अपने ही बनाये हुए हैं, हमारे मन ने ही उसे ग़लत देखा है। हम अपने दुःख का दोष दूसरे पर मढ़ देते हैं।

हम कैसे कह सकते हैं 'हे भगवान! हम आपके आदेश का पालन करेंगे।' हमने उनकी बात कब मानी है? यह तो तभी संभव होगा जब हम कहेंगे कि 'हे भगवान! मेरा मन, मेरी बुद्धि और मेरी 'मैं' अब राहों में नहीं आयेंगे। आप हुक्म कीजिये।' जो सच ही भगवान का भक्त है, वह तो यही कहेगा : 'जेहि विधि राखे राम, तेहि विधि रहिये,' और जो भगवान ने कहा है, उसे जीवन में उतार लेगा।

याद रहे, जो भी भगवान के पथ पर अग्रसर होते हैं, वे ठाकुर बनने नहीं, चाकर बनने जाते हैं; वे तो सेवा करना चाहते हैं। उनकी तो प्रार्थना ही एक है : 'जन्म जन्म रति राम पद यह वरदान हूँ माँग।'

हमें इस बात को समझना चाहिये। हमें यही कहना चाहिये, 'भगवान! हमें तो इतना ही वर दीजिये, हम जितनी बार भी जन्म लेकर आयें, आपके चरणों की सेवा करते रहें। यह संसार तो आपका है, यहाँ मेरा तो कुछ है नहीं, इसलिये यहाँ 'मैं' न रहे, मन न रहे और यह बुद्धि न रहे, जो आपको समझ ही नहीं सकती।

हे भगवान! जो विषय आपके पथ पर चलने में विघ्न बने, उसे तोड़ दो। यदि मेरे मन की रूचि आपकी राहों में आती है तो इस दिल को तोड़ दो! यदि यह बुद्धि निर्णय लेकर आपकी राहों में आती है तो यह मेरी दुश्मन है, मेरी बुद्धि को फोड़ दो! मेरा एक सज्जन है तू, एक सत्य है तू। जो तूने कहा, वही ठीक है। यदि मैं तेरे आदेश का पालन न कर सकूँ तो जो चीज़ मेरी राहों में आये, उसे तोड़ दो।'

साधक जब साधना करते हैं तो वह जंगल में इसलिये नहीं जाते कि दुनिया ख़राब है। वह तो इसलिये जाते हैं कि, 'मेरे चित्त में जो ख़राबी है, वह देख तो लूँ। दुनिया तो मेरा विश्वास करती है,परन्तु क्या मैं इस के योग्य भी हूँ? दुनिया तो मुझे हितैषी समझती है, क्या मैं सच में हितैषी हूँ?'

जो जीव दुनिया के छोटे छोटे दुःखों में फंस जाता है, वह साधना क्या करेगा? वह तो पहले ही अपने से हारा हुआ है। जो अपने से ही स्वतंत्र नहीं, वह कैसे कहेगा, 'हे भगवान! जो आप कहें, वही होगा। आप रेखा में भर कर उसमें अपनी लेखनी डालकर इतना कुछ देते हो। हम देखते रह जाते हैं, कभी कभी सुन लेते हैं, जान भी लेते हैं कि आपने ऐसी बात कही, परन्तु हम उसे कर क्यों नहीं सकते?

सत् तो अनंत काल से चला आ रहा है, वह बदल नहीं सकता। जीव की वृत्तियाँ बदल सकती हैं, बाह्य चीज़ें बदल सकती है, सब कुछ बदल सकता है, किन्तु सत् नहीं बदलता और आपकी कथनी नहीं बदल सकती। वह हमारे जीवन में व्यावहारिक स्तर पर पूर्णतयः उतरनी चाहिये। आपने एक शब्द भी तो ऐसा नहीं कहा, जिसका रूप नहीं है।'

हम स्वरूप को देख कर पसंद करते हैं परन्तु रूप में नहीं आना चाहते। जीवन में रूप और स्वरूप, दोनों ज़रूरी हैं। स्वरूप की कथनी शास्त्र ने कही है। हम उसे पढ़ कर बहुत खुश होते हैं। उसे सुन कर ही हमें इतना आनंद मिलता है कि हम उसे बार बार सुनना चाहते हैं, परन्तु रूप में करना नहीं चाहते। यदि उनकी बात हम जीवन में मान लें, तो हमें कभी दुःख नहीं होगा। हम अपनी ही 'मैं' के कारण बंधनों में बंधे हुए हैं। जब हमें ही यह विचार आयेगा कि हम इन बंधनों में क्यों बंधे, हम क्यों हार जाते हैं बार बार, तभी कह सकेंगे, 'हे भगवान! जो आप कहें सो होगा।'

तब हम वही करना आरम्भ कर देंगे जो भगवान ने कहा। तभी समझ आयेगी कि एक ओर रेखा है और दूसरी ओर शास्त्र कथित बुद्धि है। शास्त्र बतलाते हैं कि हमारे बंधन हमारी ही बुद्धि है और हमारा ही मन है। भगवान ने कहा, यह मुझे दे दे और जो मैं कह रहा हूँ उसे मान ले।

'मैं' ने अपनी आज़ादी को आप ही छीन लिया, मिथ्या मनोजग में फंस गया और वहाँ सत्य को स्थान नहीं दिया।

हम कहते हैं कि पूजा के पश्चात् प्रसाद मिलता है, वह प्रसाद क्या है? वह प्रसाद तो हम हैं। हम वही करेंगे जिससे हमें प्रसाद ही प्रसाद मिले। वास्तविक प्रसाद यही है कि जहाँ हमारी लग्न थी, वह हमने मान लिया और हम वही हो गये। परिणामस्वरूप सबको प्रसाद मिल ही गया।

श्रीमद्भगवद्गीता, गुरु ग्रंथ साहिब, बाईबल इत्यादि अनमोल कथन हमारे पास हैं। यह वह अमूल्य धन है जो हमें आनंद दे सकता है, जो हमारे सब बंधन काट सकता है, जो हमें कभी दुःखी नहीं होने देगा। शास्त्र पुकार पुकार कर एक ही बात कह रहे हैं, कि उठ और जाग! तू अपने बंधन आप ही तोड़ कर अमर हो जा! ❖

सत् में चित्त टिकाव

..अरे कर्म करूँ तो तोरे लिये, कोई भाव भरूँ तो तोरे लिये।
कुछ बात करूँ तो तोरे लिये, अरे जीऊँ जीऊँ तो तोरे लिये।।

परम पूज्य माँ एवं उनके पिता जी सी एल आनन्द

पिता जी - अर्जुन ने भगवान से श्रेय का पथ पूछा था। भगवान ने कहा, 'मद् चित्तभव', तू अपना मन मुझमें लगा और उसमें तेरा कल्याण हो जायेगा। परन्तु जब भगवान ने भक्तों के गुण बताये, तो उसमें इस बात पर ज़ोर दिया कि तुम आत्म शुद्धि करो और संसार की सेवा करो। यह एक बहुत ज़रूरी चीज़ है। तो मनुष्य को 'मद्चित्त' होना चाहिये, भगवान में चित्त लगाना चाहिये या सेवा और आत्म शुद्धि का ख्याल रखना चाहिये? इनमें से कौन सा पथ एक साधारण मनुष्य के लिए ठीक होगा? आप इस पर कुछ रोशनी डालिये।

प्रश्न अर्पण-

विभिन्न विधि विभिन्न शब्द, कही कही ज्ञान रे देते हो।
जहाँ समझ ही नहीं पड़े, वहाँ समझ क्या देते हो।।१।।

कभी ज्ञान कहो कभी प्रेम कहो, कभी कर्म कही समझाते हो।
पर याद रहे हाय राम मेरे, जहाँ समझ नहीं समझाते हो।।२।।

स्पष्ट बात गर तुम करो, तब समझ आ जायेगा।
मन की बात हाय क्या करूँ, नहीं यह समझ नहीं पायेगा।।३।।

तत्व ज्ञान

जिसे त्रै कोण की बात कहें, वह पूर्ण बात रे एक है।
बुद्धि जो मनन न करे, कहे यह भाव अनेक है।।४।।

मद् चित्त जब श्याम कहा, सत्य हृदय में धरो कहा।
निरन्तर सत्य गर हृदय बसे, चित्त शुद्ध हो जायेगा।।५।।

कर्म भी जो उस पर रे हो, वह राममय ही होयेगा।
कर्म में नहीं नहीं, वह सत्य में साधक खोयेगा।।६।।

गर इक पल राम को मत भूलो, वह साक्षी बनी के संग रहे।
गर राम राम मन राम कहे, क्रूर भाव नहीं उठ सके।।७।।

हो एक भाव हो प्रेम भाव, कौन चित्त फिर शुद्ध करो।
उस चित्त का अरे क्या कहना, जो राम चरण में टिका रे हो।।८।।

सत्य प्रतिष्ठित जिसमें हो, जहाँ साक्षी सत्य रे नित्य रहे।
वा कर्म हाय साधक रे, सर्वश्रेष्ठ ही हो सके।।९।।

वह कर्म करे अरे नहीं नहीं, जो होये सो होयेगा।
वह आप करे कुछ नहीं नहीं, वा प्रेरक राम ही होयेगा।।१०।।

जो भी कर्म अरे जब भी करे, परिस्थिति अनुकूल हो।
साक्षी राम निरन्तर ही हो, तो कभी न भूले वो।।११।।

वह राम को देखे कर्म नहीं, नैष्कर्म हो जायेगा।
नैष्कर्म सिद्धि साधक, तब ही तो रे पायेगा।।१२।।

सो राम में चित्त रे नित्य रहे, चित्त शुद्ध हो जायेगा।
हर कर्म फिर जो भी करे, चरण में चढ़ जायेगा।।१३।।

जब लौ भावना यह न हो, तो पृथक् पृथक् पथ माने है।
है कर्म और योग और, ज्ञान और यह जाने है।।१४।।

भक्ति भी कुछ और है, भक्ति कारण माने है।
नहीं पूर्ण एको राम रे है, है अखण्ड मन यह जाने है।।१५।।

कर्म की गति भी पुनि समझ, वह मैं करे सो मेरा है।
जो होये होये हुआ करे, वही कर्म कहो तेरा है।।१६।।

जब प्रेरक मैं रे बन गई, तो कर्ता भी हो जाओगे।
नैष्कर्म सिद्धि साधक, तब किस विध तुम पाओगे।।१७।।

कहोगे कहूँ नहीं मैंने किया, कहोगे कहूँ प्रेरक वह है।
कहोगे कहूँ जो शास्त्र कहें, कहोगे कहूँ कर्ता वह है।।१८।।

कहने की वह बात है, बिन अनुभव के कह लोगे।
नैष्कर्म स्थिति मन की, बिन ही तो तुम कह लोगे।।१९।।

गर मन में हो तेरे राम राम, साक्षी बन नित साथ रहें।
चरण में टिके हाय साधक रे, निरन्तर तेरे भाव रहें।।२०।।

फिर परिस्थिति जो आ जाये, कहेगा राम ही लाये हैं।
कोई अपना काज कोई कर्म रे है, वा कारण इस विध आये हैं।।२१।।

फिर कर्म जो होयेगा, वा प्रेरक मन नहीं रे होयेगा।
स्थूल रूप में जो हुआ, प्रेरक स्थूल ही होयेगा।।२२।।

फिर प्रेरक तू जब नहीं रहे, तो प्रेरित तू नहीं होयेगा।
जो भाव प्रवाह तेरा बहा, उसमें तू नहीं खोयेगा।।२३।।

कर्म करे जो तन तेरे, वह स्वतः ही होयेंगे।
कर्तापन में भाव तेरे, उस पल नहीं रे खोयेंगे।।२४।।

ऐसी भावना गर समझो, तब ही सफ़ल हो पायेगा।
जब राम में चित्त हो टिका हुआ, या सत्य में चित्त टिकायेगा।।२५।।

गर साक्षी राम तेरा नहीं बना, तेरी सत्य से प्रीत ही नहीं हुई।
कर्म तेरे अरे राम बिना, सत्यपूर्ण रे नहीं होगी।।२६।।

सो राम राम अरे राम कहो, राम निरन्तर चित्त धरो।
राम को सत्य रे जान करी, राम में ही अरे मन धरो।।२७।।

जब नयन में राम रे आ जाये, तो प्रेम भी बह ही जायेगा।
प्रेम बहे जब नयनन् से, तो चित्त शुद्ध हो जायेगा।।२८।।

राम बुला बुला भी सको, जब मन राम को मान ले।
सत्य को पहचाने जो, तभी कर्म राह भी जान ले।।२९।।

कर्म में सत्य प्रवाहित हो, तब ही हो गर हृदय में हो।
या हृदय में सत्य रे नाहिं हो, वा कर्म में सत्य रे क्योंकर हो।।३०।।

यह जान करी हाय मन समझो, उन रुचि अनुकूल ही कहा।
श्याम कहा तू जो भी करे, साधक वो ही करता जा।।३१।।

पर साक्षी सत्य बनाओ रे, फिर त्रै मिलन हो जायेगा।
स्थूल लोक तोरा कर्म लोक, सूक्ष्म सों मिल जायेगा।।३२।।

सूक्ष्म में है भाव प्रवाह, अशुद्धि जिसको कहते हैं।
चित्त वृत्ति अरे भावना, भी तो इसको कहते हैं।।३३।।

हो स्थूल मिलन अरे सूक्ष्म से, पुनि कारण से यह मिल जाये।
बुद्धि राही ज्ञान भी, तो ही मिल पाये।।३४।।

हो त्रै मिलन फिर त्रै पति, त्रै अतीत हो जायेगा।
कर्म से मन से ज्ञान से, तब ही तू उठ पायेगा।।३५।।

सो राम राम अरे राम कहो, कोई भी पथ रे तू मन लो।
सत्य साक्षी गर तोरा भये, त्रै मिलन तब ही रे हो।।३६।।

पर विधि पूछो तो पुनि कहूँ, है राम राम हाय राम राम।

राम सुनो मोरी बात सुनो, गर सत्य से प्रीत रे हो जाये।
गर लग्न हो तुझसे राम मेरे, तो मन तुझी में खो जाये।।३७।।

फिर बुद्धि रे बुहारी ले, राहें ही रे देखेगी।
शुद्धि जिसको कहते हैं, वह आप ही राम रे कर लेगी।।३८।।

कर्म रे कौन अरे कैसे हैं, यह कुछ भी मैं न जानूँ।
अरे सत्य से लग्न ही हो जाये, तब राम मिले रे यह मानूँ।।३९।।

यह जान करी कहूँ, राम राम - - - - - -

अरे कर्म करूँ तो तोरे लिये, कोई भाव भरूँ तो तोरे लिये।
कुछ बात करूँ तो तोरे लिये, अरे जीऊँ जीऊँ तो तोरे लिये।।४०।।

गर ऐसी भावना हो जाये, तब गुणातीत हो पायेगा।
नहीं भक्ति गुण कोई कर्म गुण, कोई ज्ञान गुण ही आयेगा।।४१।।

गुणातीत तब ही होये, जब त्रै मिलन हो जायेगा।
त्रै में पूर्ण पूर्ण वह, फिर पूर्ण में खो जायेगा।।४२।।

यह बात जान कर साधक रे, समझ रे श्याम वही कहें।
जैसा दूजा कर सके, हाय उचित ही है वह यही कहें।।४३।।

वह मन ठुकराते कभी नहीं, वह न्यून बताते कभी नहीं।
जो आये वह ही उचित रे है, विपरीत बताते नहीं नहीं।।४४।।

उसी स्तर से उठाये करी, वह हृदय से आप लगाते हैं।
इस कारण ही जान ले, वह दयामयी कहलाते हैं।।४५।।

वह करुणापूर्ण आप हैं, यही तो करुणा जान ले।
वह ऐसी बात रे कहते हैं, जस समझ हो बस जान ले।।४६।।

गर सच बात है राम मेरे, तुम झुक कर के उठाते हो।
मैं सुना तुम बार बार, अरे इस जग में रे आते हो।।४७।।

तो सुन ओ राम अब आकर के, मुझे उठा के जाओ रे।
कौन पथ अरे क्या रे है, आ के मुझे बताओ रे।।४८।।

ज्ञान न जानूँ प्रेम न जानूँ, योग की बतियाँ न जानूँ।
क्योंकर कौन रे राम भजे, मैं ऐसी बात भी न जानूँ।।४९।।

पर राम राम तुझे राम कहूँ, अब तुझको आना ही होगा।
देख राम हाय झुक कर के, अब मुझे उठाना ही होगा।।५०।।

पर विधि मोपे अरे नहीं नहीं, मैं तो राम कहूँ।
बाकी बातें न समझूँ, है सत्य राम इतना समझूँ।।५१।।

गर हृदय में सत्य रे आ जाये, तो बाकी हो ही जायेगा।
फिर रेखा में जो भी है, मन वो ही तो कहलायेगा।।५२।।

को' पथ पे जाऊँ न पूछूँ, अब क्या करूँ यह न पूछूँ।
हाय सत्य है तू तुझे हृदय धरूँ, यह कैसे करूँ इतना पूछूँ।।५३।।

और पूछ पूछ के पुनि कहूँ, कुछ समझ नहीं रे आता है।
सत्य पथ से राम कहो, मन बिछुड़ बिछुड़ क्यों जाता है।।५४।।

तो राम राम अरे राम कहूँ, तुझको राम मैं मान लूँ।
जो तूने कहा वो सत्य कहा, यह भी बात मैं जान लूँ।।५५।।

तू इस सबसे है परे, योग परे तू ज्ञान परे।
कर्मन् से तू है रे परे, गुणातीत तुझे जग कहे।।५६।।

तू अब कर्म की बात कहे, या योग की बात रे कह करके।
ध्यान लगाऊँ ज्ञान कहूँ, ऐसी बात रे कह कर के।।५७।।

दूर रे मुझको नहीं करो, अपनी बात रे मुझे आन कहो।
प्रतिष्ठित सत्य रे हृदय में हो, ऐसी बात अब तुम कहो।।५८।।

पहली मुलाकात

हमारे ही पात्र छोटे हैं, वह तो अथाह सागर हैं..

श्रीमती उमा दत्त

अर्पणा पुष्पांजलि अंक जून १९९८

परम पूज्य माँ के साथ श्रीमती उमा दत्त

पूज्य माँ से मेरी पहली मुलाकात १९६५ में यहीं मधुबन में हुई। उस दिन, २१ जून को जैसी गर्मी बाहर थी, वैसी ही मेरे भीतर भी थी। मन में कई तरह के गिले-शिकवे भरे हुए थे। पूज्य माँ के पावन प्रेम में आन्तर की सब धूलि आँसू बन कर बह गई, भीतर सब शान्त हो गया। जिन सब के प्रति मेरी शिकायतें और गिले थे, उन सब के लिए पूज्य माँ ने मेरे मन में प्रेम और हमदर्दी का भाव जागृत कर दिया।

मुझे ऐसा लगने लगा जैसे पूज्य माँ ने मेरा सारा ही दुःख बीन लिया है और मुझे निर्भार कर दिया है। मेरे पाँव जैसे ज़मीन पर नहीं लगते थे और मैं कहीं आकाश पर उड़ने लगी। मेरे भीतर से गीत बहने लगे। वही गीत मैं लेखनी में पिरो कर नित्य पूज्य माँ के चरणों में अर्पित करने लगी। मुझे उन दिनों ऐसा लगता था जैसे मेरी दुनिया ही बदल गयी है।

पूज्य माँ का पावन प्रेम हमें नित्य अपनी ओर खेंचने लगा। महीने दो महीने में हम सपरिवार जालन्धर से मधुबन आने लगे और आते ही रहे। दत्त साहब (मेरे पति) के मन में पूज्य माँ के लिए मेरे से भी अधिक श्रद्धा थी।

धीरे धीरे माँ ने हमें शास्त्रों का वास्तविक अर्थ समझाया। उन्होंने बताया कि शास्त्र का केवल पठन ही नहीं किया जाता, उनको जीवन में जीया जाता है। भगवान ने शास्त्र में जो कहा है, उसे मन से, वचन से और कर्मों राही जीवन में किया जाता है।

शनैः शनैः माँ के पावन प्रेम ने हमें पूरी तरह से अपनी ओर खेंच लिया। १९९० दिसम्बर में हम जालन्धर में अपनी कोठी इत्यादि सब कुछ बेचकर माँ के पास, अर्पणा आश्रम के निकट ही मधुबन में आ गए। पूज्य माँ ने हमारे सारे परिवार को ही अपनी छत्रछाया में ले लिया।

यह हमारे धन्य भाग्य हैं कि हमें पूज्य माँ मिले, इतना प्यारा अर्पणा परिवार मिला। यहाँ की यह विशेषता है कि कोई भी यहाँ अकेला महसूस नहीं करता। यहाँ पर सब के सुख दुःख सांझे हैं। माँ अपना आप हम सब पर लुटा रहे हैं। हमारे ही पात्र छोटे हैं, वह तो अथाह सागर हैं - जिनकी थाह हम पा नहीं सकते। अभी हमें माँ से बहुत कुछ सीखना है। हमारे जैसे न जाने कितने प्यासे लोग माँ से मार्गदर्शन पाने को आतुर हैं।

हम परमात्मा से हर पल यही दुआ करते हैं कि हमारी प्यारी माँ सदा ही स्वस्थ रहें और हम सबको सत्य की राह दिखाती रहें। हम सबको माँ ने इतना दिया है कि उसे शब्दों में कहना मुश्किल है। हम उनके बताये हुए सत् पथ पर चल सकें, इसी से हम माँ को सच्ची खुशी दे पायेंगे। ❖

परम पूज्य माँ के साथ श्रीमती उमा दत्त एवं उनका परिवार

अनुभव अपना होना है

प्रस्तुति - विष्णु प्रिया महता

अर्पणा पुष्पांजलि अंक जून २००१

प्रश्न : आज यह समझ आई कि बुद्धि दर्शन कर सकती है, अनुभव नहीं ले सकती। दर्शन पाकर यदि उससे संग हो जाये तो यह संग अनुभव तक ले जा सकता है।

पूज्य माँ : वह अनुभवगम्य है, बुद्धिगम्य नहीं। अनुभव आपको अपना होना है। जो अनुभवी है, वह वास्तविक ज्ञानी है। ज्ञानी को बुद्धि राह ज्ञान है। अनुभवी वह है जो अपना अनुभव बताता है। वह केवल पठन में नहीं मानता, वह तो निजी अनुभव की बात करता है।

वह कहता है, 'मैं इस तन के साथ रहा हूँ, मेरा यह अनुभव है।' वह प्रेम को जानता है, क्योंकि उसने प्रेम किया है। जिसने प्रेम लिया है, उसे प्रेम का बोध है, उसने बुद्धि राही प्रेम को देखा है परन्तु उसे यह नहीं मालूम प्रेम किसे कहते हैं। एक के आन्तर से ज्ञान बहता है, उसे पता है यह बहाव कहाँ से आया। एक ने सुना है! वह कहता है, 'बहता तो है, इस प्रकार होता है,' परन्तु उसे अनुभव नहीं। इसी ढंग से कर्म होते हैं। यदि 'मैं' है तो कैसे समझ आये कि 'मैं' रहित क्या होता है? यह कर्म तो हुए पर वहाँ 'मैं' न थी। 'मैं' रहित सर्वारम्भपरित्यागी का अनुभव नहीं हो सकता।

अनुभव अपने स्वरूप का

अनुभव अपने स्वरूप का होता है। बोध दूसरे का भी हो सकता है, समझ दूसरे की भी आ सकती है, परन्तु अनुभव दूसरे का नहीं हो सकता। अनुभव वही है जो आप हो - उसे कोई जाने, या न जाने फ़र्क़ नहीं पड़ता। जिसे त्रै स्तर पर अनुभव हो, उसे अनुभवी कहते हैं। उसका ज्ञान दूसरे के स्तर से बहता है, उस के कर्म दूसरे के स्तर पर आकर होते हैं, इसलिये कहते हैं कि उसकी वास्तविक स्थिति कोई नहीं जान सकता। उसका प्रेम अमर है! वहाँ रुचि-अरुचि, सजातीय-विजातीय की बात नहीं। उसकी पसन्द-नापसन्द की बात

नहीं! फिर भी सब समझते हैं कि वह सबको प्यार करता है। वह दूसरे के स्तर पर जाकर उसके साथ तद्‌रूप होता है।

इस बात को इस प्रकार समझें! आप मेरी पसन्द तब बन सकते हैं जब आपका स्वभाव मेरे जैसा हो। आप मेरी पसन्द तब हों, जब आपको लाख दर्द भी हो, परन्तु आप हँस सकें, आपको कोई फ़र्क़ न पड़े। जहान में क्या होता है? दो दो पैसे के कर्मों के लिये गड़बड़ होती है। छोटे से धन के लिये मुसीबत, मान के लिये मुसीबत।

परम पूज्य माँ

अनुभवी जिन छोटी छोटी बातों में कर्मशील होता है, क्या वह उसे पसन्द हैं? उसके अपने हज़ारों लुट जायें, उसे कोई परवाह नहीं - परन्तु किसी के दो सौ रूपये बचाने के लिये वह अपने हज़ारों बहा देगा, अपना समय भी दे देगा। प्रतिरूप में उसे कुछ नहीं चाहिये।

ऐसा अनुभवी जो भी करता है, एक भी कर्म उसका रुचिकर नहीं, ज्ञान बताना भी उसको रुचिकर नहीं। जो उसके सामने आता है, वह उसके स्तर पर जाकर बात करता है। ज्ञानी को उसकी स्थिति से बताता है, बच्चों को उनकी स्थिति से बताता है।

जब पिता जी ने प्रश्न पूछा तो उनको कहा - पूर्ण ब्रह्म है, तो बात ख़त्म हो गई! आपको आपके स्तर से कहती हूँ! मेरे लिये तो यह तन रुपा वस्त्र चिथड़े हैं! मुझे जन्म जन्म का अनुभव है। आपके लिये नई चीज़ है। आप कहते हो तूने मेरा काम कर दिया! तू माँ बनकर आई! मुझे यह बनना पसन्द नहीं। यदि मुझे किसी नाते की ज़रूरत होती तो अपना सम्भाल कर रखती। अपना सम्भाला नहीं, आपका सम्भालने के लिये हर कोशिश करती हूँ। आपकी दोस्ती कराने के लिये सब करती हूँ। यदि हम जैसों की यह बात है तो ज़रा सोचो भगवान की क्या होगी?

प्रेम का रुचि अरुचि से सम्बन्ध ही क्या? यदि मेरी रुचि अरुचि राह में आए तो मेरी और आपकी कभी नहीं बन सकती। आपके कर्म मुझे पसन्द नहीं, आपके प्रेम को मैं प्रेम नहीं कहती। क्या वह मेरे लिये रुचिकर हैं? केवल अरुचिकर ही नहीं, आप सब मेरे

प्रतिकूल हो। आपके कारण मुझे कौन सा काम नहीं करना पड़ता? आप मेरे रुचिकर कैसे हो सकते हैं? इसी प्रकार आपके प्रश्न मेरे मनभावन कैसे हो सकते हैं? आप ज्ञान के प्रश्न को श्रेष्ठ और कर्म को न्यून समझते हैं। तीनों स्तरों पर आपका कोई भाव, कोई कर्म मेरे अनुकूल नहीं।

कर्म वाले कहते हैं - यहाँ कर्म बहुत श्रेष्ठ हैं, प्रेम वाले कहते हैं, प्रेम बहुत है। वास्तव में यहाँ कुछ भी नहीं। आप कहते हैं आपके पट खुल रहे हैं, परन्तु क्या आपके प्रश्न मेरे सजातीय हैं, रुचिकर हैं? आपकी स्थिति क्या मेरे लिये रुचिकर हो सकती है? आपका मन और कर्म मेरे लिये रुचिकर नहीं हो सकता।

कोई सामने आ गया और कहा कि यह कर्म कर दे, पसन्द हो या न, सब ठीक है! कोई कहता है प्रेम चाहिये - तो चलो दे दिया! इसी ढंग से किसी ने प्रश्न किया तो उत्तर दे दिया - आपको पसन्द आये या न आये, इसका फ़र्क़ नहीं पड़ता। इसका प्रभाव आप पर क्या होगा - इससे मेरा सम्बन्ध नहीं। प्रेम के परिणामस्वरूप आप मुझे मार देंगे तो आपकी इच्छा! यदि यह बात इस तन मन की है, तो पूर्ण की तो बात ही क्या! वह तो सबसे परे है।

जहाँ 'मैं' प्रधान है, वह उसे समझ ही कैसे सकता है? बिन्दुमात्र इस तन को तो आप समझ नहीं सकते - फिर अनुभव क्या होगा? भगवान की स्थिति को आप कैसे जान सकते हैं? वह तो अनुभवगम्य है, दर्शनगम्य नहीं। आपकी बुद्धि दर्शन ले सकती है। 'मैं' से आवृत बुद्धि वहाँ 'मैं' आरोपित करती है। भगवान ने गीता में कहा, तनधारी मुझे तनवाला मानते हैं - इसलिये समझ नहीं सकते।

भगवान की तद्‌रूपता

स्वयं भगवान, पूर्ण ब्रह्म, कृष्ण ने गोपियों के साथ रास लीला रचाई। वह अर्जुन के साथ युद्ध में गये। उन्होंने कहा, 'मैं हथियार नहीं उठाऊँगा।' परन्तु वह थे ऐसे नीतिज्ञ कि अपनी सेना वहाँ भेजकर दुर्योधन की सारी सेना को कमज़ोर कर दिया।

दुर्योधन की फ़ौजें बहुत ज्यादा थीं, अकेले अभिमन्यु को उन्होंने घेर कर मारा था। महाभारत के युद्ध में वह कैसे हार गए? भगवान कृष्ण ने अपनी फ़ौजें भेजकर उन्हें कमज़ोर कर दिया। ज़रा कल्पना करें कि भगवान कृष्ण के सैनिकों ने दुर्योधन की फ़ौजों को क्या कहा होगा? वह कहते होंगे, 'हमारे मालिक तो भगवान हैं। वह कहते होंगे, तीर चलाकर मुझे ही मार दो, मैं हथियार नहीं उठाऊँगा। वह तो भगवान हैं।'

दुर्योधन की सेना में कृष्ण की जय जयकार होने लगी। दुर्योधन ने अपनी चालाकी की। उसे भय था कहीं कृष्ण की सेना मिलकर विद्रोह न कर दे। उसने भगवान की सारी सेना को टुकड़ियों में बांट कर अपनी सेना में डाला! इसके परिणामस्वरूप सेना की हर टुकड़ी में कृष्ण का प्रचार होने लगा! वह कहते होंगे - 'कृष्ण ने कहा मुझ पर बाण चलाओ! अरे! वह तो भगवान हैं।' अपनी फ़ौजें देकर कृष्ण ने दुर्योधन को हरा दिया।

उसको कहा तू हथियार ले जा, फ़ौजें ले जा। उन्हें पता था, उस ओर से एक भी तीर नहीं चलेगा।

वही कृष्ण क्या अपने समय वह नीति नहीं वरत सकते थे? स्वयं तो वह जरासंध से इतनी बार हारे! अर्जुन को भेस बदल कर जरासंध को मारने की नीति बताई, परन्तु अपने लिये कुछ नहीं किया। वह सर्वारम्भ परित्यागी हैं! इस रहस्य को ध्यान से समझें।

'आरम्भ' मोह कराता है। यदि कहें नीति कृष्ण ने आरम्भ करी, तो नहीं! अर्जुन की पुकार ने आरम्भ करी! दुर्योधन का दम्भ चूर होने लगा। कृष्ण ने अपने लिये कोई नीति नहीं सोची थी। कृष्ण को लोग चार सौ बीस भी कहते हैं, नटखटिया भी कहते हैं। इस बात को समझो, फिर कुछ कुछ समझ आ जायेगी।

अनुभव तब होता है जब आप वैसे हो जाओ, नहीं तो समझ नहीं आ सकती। एक ओर कहेंगे भगवान को साधारण जीव बनाओ - फिर देखो उनका प्रेम कितना महान है, जो जीव नहीं कर सकता। वहाँ कर्तापन का प्रश्न ही नहीं। उसका अनुभवी वही होगा जो तीनों स्तरों पर वही हो जायेगा।

प्रश्न : अनुभव लेने का ढंग यही है कि जीव दर्शन लेता जाए! फिर स्वतः ही वह गुण आ जायेंगे।

पूज्य माँ : एक प्रेम है और एक पसन्द। यहाँ के लोग मुझे पसन्द करते हैं परन्तु क्या प्रेम है? प्रेम में संग होता है, तद्रूपता होती है। पसन्द इसलिये है, क्योंकि इससे आपको फ़ायदा है। पता है काम बन जायेगा, मुझे लोग ज्ञानी कहेंगे, इससे ज्ञान मिल जायेगा। प्रेम तो वह करता है जो कहता है मैं वैसा ही बनूँगा। पसन्द करने वाला रुचि प्रधान है।

दूसरी ओर देखो - आपके गुण मुझे पसन्द नहीं! लालच, लोभ, क्षोभ, हर पल का झगड़ा क्या मुझे पसन्द हो सकता है? आप इस तरह मुझसे बात करते हैं तो मैं आश्चर्यवत् देखती हूँ - कि यह हो कैसे सकता है? जिसे प्रेम होगा, वह ख़ुद वैसा बनना चाहेगा। आप कहते हैं यह काम छोटा है या बड़ा है। प्रेम बहुत फ़र्क़ चीज़ है। आप रुचि के पीछे जाते हैं, यही मूर्खता है।

आप कहते हैं मुझे प्रेम है और फिर कहते हो मैं थक जाता हूँ, मैंने काम नहीं करना; यह काम बड़ा है, यह छोटा है! यदि प्रेम करते, तो यह सब नहीं बनता। जिस काम के लिये किसी ने पुकार लिया, लग जाओ। पसन्द का प्रेम से कोई सम्बन्ध नहीं। मेरी पसन्द का क्या मतलब? मैं कौन होती हूँ पसन्द करने वाली?

भगवान कहते हैं, 'अनन्य भाव से जो मुझ को भजता है, उसका योगक्षेम मैं करता हूँ।' 'मैं' वालों को कहते हैं - 'भाग जाओ।' उनका अपना जहान है। जो उनकी आधी बात मानता है, उसकी कीमत के अनुसार उसे दे देते हैं। जो उनको पूर्ण दे देता है, वह उसकी ज़िम्मेवारी तीनों स्तरों पर पूर्णतया सम्भाल लेते हैं - उसका पूरा योगक्षेम करते हैं, वह भी प्रमाण बन जाते हैं।

(परम पूज्य माँ द्वारा प्राप्त २०-१०-१९६७ के सत्संग पर आधारित) ❖

आन्तर दर्शन

श्रीमती शान्ता देवी

अर्पणा पुष्पांजलि अंक दिसम्बर १९९९

परम पूज्य माँ के साथ श्रीमती शान्ता देवी

आज से लगभग आठ वर्ष पूर्व अपने दीर्घ जीवन के पापों की गठरी सिर पर ढोये हुए और जीवन की विपरीतताओं में व्याप्त निराशा का जामा पहने हुए, मैं अपने ही सगे सम्बन्धियों के निर्देशन पर अर्पणा आश्रम में स्थायी सुख, शान्ति व आश्रय की कामना से आई थी।

परम पावनी पूज्य माँ के आश्रय तले सर छुपाने के लिए, परम पिता परमात्मा की अहैतुकी कृपा से इस आश्रम में शरण ग्रहण का परम सौभाग्य तो प्राप्त हो गया, पर चित्त में पड़े जन्म जन्म के मलपूर्ण संस्कारों से मैं पूर्णतया ग्रसित थी। सूक्ष्म मन में ५१ वर्ष पूर्व

का एक ही भाव सजग था कि 'मुझे एक ऐसे आश्रम में रहना है, जहाँ माँ का प्यार मिल सके और जितना भी हो सके इस तन से कुछ सेवा कर पाऊं।' अन्ततः ईश्वर ने वह पुकार सुन ही ली।

अर्पणा के पावन धाम में पहुँच कर और परम पूज्य माँ की स्वीकृति पाकर, जहाँ मैं भगवान जी का मन ही मन धन्यवाद करती रही, वहाँ स्वयं पर हैरत होने लगी कि कहाँ मैं नीच, अधम, अपावन, दुष्टा नारी और कहाँ इस बैकुण्ठ धाम में वास करने का सौभाग्य.. यह विपरीतता कैसी!

जब जब भी मैं स्वयं पर दृष्टिपात करती तो यह सत्यता नज़र आती कि जब से मैंने होश संभाली है, न ही कोई जप तप, पूजा-पाठ व दान किया है, न ही किसी की सेवा व धर्म अर्थ पुण्य कर्म ही किये हैं। फिर भी परम पूज्य माँ की चरण शरण, आश्रम का शुभ संयोग व संत समागम मुझ पापिन को कैसे मिला? यहाँ आकर व सब कुछ पाकर मन में एक ही भाव उठता थाः

तुझ को पाकर माँ, सब कुछ पा लिया है नाथ।
उठते नहीं हैं हाथ, अब इस दुआ के बाद।।

पर अधम मन तो अधम ही होता है, सब सुख-साधन, संत-समागम, परम पूज्य माँ व पूज्य छोटे माँ से अहोरात्रि दुर्लभ सत्संग पाकर भी मैं, अपनी चित्त वृत्तियों की अक्सर शिकार हो जाती।

इस मनोतनाव में आकर जीवन के कई अमूल्य वर्ष मैंने व्यर्थ में ही खो दिये। निष्क्रिय जीवन व्यतीत कर के निस्सन्देह चित्त ग्लानियुक्त था, परन्तु मन के हाथों बिकने वाले जीव की जो हालत होती है, उस सब का अनुभव मेरे जीवन में ख़ूब आया।

ऐसे में स्वर्गीय वातावरण का प्रभाव, तपोमय जीवन की आध्यात्मिक स्थली व निष्काम सेवा की कर्म भूमि, अर्पणा का प्रसाद मेरे शरीर में निष्फल जा रहा था, डॉक्टरों की दवाइयों का प्रभाव भी निष्फल हो चुका था!

अन्ततः जब आन्तर ने एक बार फिर सब बाह्य आसरों को त्यज कर, स्वयं को पूर्णतया परम पूज्य माँ के चरणों में समर्पित होने का निर्णय लिया तो तत्काल ही पूज्य माँ की चमत्कारिक जादू भरी शक्ति से मैंने स्वस्थ होना शुरु कर दिया। उन की शक्ति के प्रभाव ने उत्तरोत्तर मुझे पुनः उस पथ पर ला कर खड़ा किया, जहाँ पर आकर २ वर्ष पूर्व मैं रुक गई थी।

उस समय किसी संत की ये पंक्तियाँ मेरे मन में गूँजतीं थीं, - 'औषध राम नाम की खाइये, मृत्यु जन्म के रोग मिटाइये।'

अर्पणा मन्दिर में बैठकर व पूज्य माँ की वाणी 'उर्वशी' द्वारा प्रतिपादित आध्यात्मिक खोज सम्बन्धी विश्लेषणात्मक अध्ययन पर जब मैं परम पूज्य माँ व पूज्य छोटे माँ के मुखारविन्द से विशद विवेचन श्रवण करती हूँ तो मैं सोचती हूँ कि यह कोई मेरे पूर्वजों व शुभ चिन्तकों के ही शुभ कर्मों व पुण्यों का परिणाम है!

परम पूज्य करुणामयी माँ के रूप में मुझे एक ऐसे सद्‌गुरु का संरक्षण मिला है, जिनका समस्त जीवन ज्ञान, कर्म व भक्ति का समन्वित रूप धारण किए पग पग पर मुझे प्रेरणा व संदेश दे रहा है कि जग में कैसे जीया जाता है।

ज्यों ज्यों मुझे परम पूज्य माँ के जीवन को निकट से देखने का अवसर मिला, त्यों त्यों मुझे उनके हृदय की विशालता, उदारता, महानता व दिव्यता के दर्शन होने लगे। साधारण से दीखने वाले उनके जीवन में उनके दृष्टिकोण की विलक्षणता के पल पल पर दर्शन करके मेरा हृदय उनके प्रति कृतज्ञता से परिपूरित है।

अपने कुकर्मों के लिए उनसे क्षमा याचना करने पर उन्होंने यह कह कर मुझे मौन करवा दिया, 'बेटे! तुमने कुछ नहीं खोया है, बल्कि पाया है।'

वाह! वाह! ऐसे हैं मेरे परम सद्‌गुरु! मेरा हृदय सहज ही पुकार उठता है : 'तुम ऐसे, हम ऐसे प्रभु जी!' कहाँ मेरे चित्त में उठे स्वयं पर ग्लानि के भाव और कहाँ उनका सहज स्वाभाविक क्षमा भाव! एक पतिता को ऊपर उठाने के लिए उनकी उदारता का कैसा अनुपम दृष्टिकोण! मैं मन ही मन उनके विराट जीवन की दिव्यता के आगे झुकती ही चली गई।

सच तो यह है कि आज हम मानसिक रूप से ग़लत सोच में आ गये हैं। अपने ही भावों का भोग भोगते हुए स्वयं ही रात दिन दुःखी हो रहे हैं। मैं अपनी 'मैं' तनो संग व अहम् भाव में भूल ही गई थी कि ज्ञान को जीवन में कैसे ख़र्च करना चाहिए।

एक ओर परम पूज्य माँ हैं - जिनका जीवन श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के प्रत्येक श्लोक का सजीव प्रमाण है, दूसरी ओर हम गीता के आदेश को न मान कर उनके हर वाक् को धरती पर गिराते जाते हैं।

हम भूल ही जाते हैं कि 'मैं' के नितांत अभाव से ही साधक की साधना का प्रारम्भिक अभ्यास शुरु होता है। अपने द्वारा किये गये छोटे से छोटे कर्म अथवा ज्ञान का अहंकार ही हमें ले डूबता है। अतः आज पूज्य माँ के चरणों में बैठ मैं उनके ही शब्दों में भगवान से प्रार्थना करती हूँ:

'ज्ञान न दे ओ राम मेरे, निज चरणन् में ही रहने दे।
इस ज्ञान से दम्भ बढ़े मेरा, निज शरणन् में ही रहने दे।।' ❖

यज्ञ-शेष

समर्पित क्या हुआ.. जब परिणाम में उस से अधिक मिल गया

श्रीमति शीला कपूर

अर्पणा पुष्पांजलि अंक जून १९९५

परम पूज्य माँ के साथ आश्रम के अन्य सदस्य

हमारे दैनिक जीवन के प्रवाह में एक ही भाव सर्वोच्च रहता है.. और वह है केवल अपने लिए व अपनों के लिए जीना। इसके अतिरिक्त हमारी आँख कभी कुछ और देखे न, कान कभी कुछ सुने न, मन बुद्धि अहं कभी अन्य की माँग भरें न। मानव जन्म पाकर भी हमारा जीवन ऐसी अमानवता से भरा है, जिसमें अन्य व्यक्ति का कोई महत्व ही नहीं..

शास्त्र कहता है कि यज्ञ तो मनीषी गण को भी पावन करता है.. साधारण स्वार्थी जनों का तो कहना ही क्या!

शास्त्र-कथित यज्ञमय जीवन की नींव वह दृष्टिकोण है जिस के द्वारा 'मैं' पर अर्पण की अपेक्षा दूसरों पर समर्पण हो। हर स्वार्थी और सकामी पुरुष, अपने काज की भाँति ही दूसरों के काज सँवारें। इसे साधारण भाषा में कहें तो दूसरे की स्थापति तथा दूसरे की चाहपूर्ति अर्थ हमें कर्त्तव्य करने हैं.. अपनी चाह, संग और मोह की आहूति दे कर विविध योग्यताओं, क्षमताओं और सामर्थ सहित अपना तन दूसरों के हेतु समर्पित करना हैं मानो वह सब अपने ही हों.. ऐसा करने के लिये अपनी रुचि अरुचि को उल्लांघ कर कर्त्तव्य

कर्म सँभालने होंगे। यदि जीवन में क्षमा, दया, करुणा के भाव प्रधान होंगे तो यह भी याद न रहेगा कि किस कार्य राही अपनी हानि अथवा अपमान भी हो सकता है।

इस बदले हुए दृष्टिकोण से जीने के परिणामस्वरूप एक अनूठे से संतोष का अनुभव होगा। निष्काम कर्म द्वारा मनोचंचलता का वेग कम होता है, चित्त की पावनता बढ़ती है तथा समत्व का अभ्यास आरम्भ होता है और कई दैवी गुण प्रदुर होते हैं। इस मनो शांति पर जीव को स्वतः ही अचम्भा होने लगता है कि क्या अपने व्यक्तित्व को दूसरों से बाँटने का परिणाम इतना सुखमय है? इसी अमृत के प्रसाद को शास्त्रों ने यज्ञ-शेष का नाम दिया है!

समर्पित क्या हुआ.. जब परिणाम में उस से अधिक मिल गया? स्थूल धन दिया, तो परिणामस्वरूप सूक्ष्म में प्रेम व आनंद पाया। औरों के आँसू पोंछने लग गए तो अपने दुःख सभी भूल ही गए और मन सुखी हो गया। यज्ञमय कर्मों से करुणा, दया, क्षमा रूपा अन्न प्राप्त हुआ.. तितिक्षा, सहिष्णुता, गंभीरता आदि इस अन्न के सहज अंग हैं। आनंद, शांति, सुहृदयता, मैत्री, प्रेम इत्यादि यज्ञ-शेष की सहज सुगंध है। इन गुणों की शक्तियाँ निष्काम कर्म से नवीन पुष्टि पा देवत्व की ओर बढ़ती हैं।

शनैः शनैः निर्द्वंद्व, निर्लिप्त, निरासक्त, मोह रहित, समदर्शी हो कर जीव इस महा प्रसाद का रसास्वादन करते हैं। निज तन के प्रति उदासीन हो कर जब वे देहात्म बुद्धि त्याग कर आत्मा में रमण करने लगते हैं तो संपूर्ण पापों से छूट जाते हैं। यही प्रसाद भगवान का चरणामृत कहलाता है। दैवी गुण संपन्न होने पर तनत्व भाव का अभाव हो जाता है। 'उदासीनवत् आसीन' मन गुणातीत अवस्था प्राप्त कर निर्मोह और निरासक्त हो, समत्व भाव पा कर नित्य तृप्त हो जाता है और आनंद में बैठ जाता है।

यज्ञ कर्म-जन्य है

तन-मन बुद्धि ही इस यज्ञ की सामग्री है जो जग रूपी हवन कुंड में अर्पित की जाती है। जीव में कर्ता भाव भी है, भोक्ता भाव भी है; देहात्म बुद्धि अहं, चाह, मनोसंग सभी हैं। त्रिगुणात्मिका शक्ति रचित तनो पिंड राही यह सब स्वतः प्रवाहित होते हैं। रेखा बधित सब गुण बधे ही हैं। यज्ञ ही वह माध्यम है जिस द्वारा इन सब गुणों को दूसरों के प्रति बहाना है.. दूसरों के सुख कारण लुटाना है। देने का नाम ही यज्ञ है। यहाँ आहूति अपने आप की देनी है। अपना तन ही निष्काम कर्मी होगा। अपना मन ही दैवी गुणों का निष्काम उपासक होगा। अपना अहंकार ही अपनी 'मैं' की हस्ती तथा अस्तित्व को भूल कर दूसरे के भले के लिये श्रेय कार्य में लगेगा। यही वह अमृत बूँद दिलायेगा, जिसके आचमन से आत्म विस्मृति होती है और भगवान आग़ोश में स्थान मिल सकता है। उस स्वरूप को पाकर राग, भय, क्रोध सभी निष्प्रयोजन हो जाते हैं।

सर्वभूतहितेरतः

यदि हम साक्षी रूप में भगवान को अपने अंग संग रखें तो सभी कर्म स्वतः ही

यज्ञमय हो जायेंगे। तब जीव वही करेगा जो यदि भगवान उस परिस्थिति में होते तो करते। भगवान का दृष्टिकोण कभी व्यक्तिगतता में सीमित नहीं हो पाएगा.. वह तो 'सर्वभूतहितेरतः' हैं।

जीव जब यह जानेगा कि सभी जनों का हित किस में है, तो अपना जीवन उसी राह पर चलाना चाहेगा.. वहाँ अपना व्यक्तित्व तुच्छ सा लगने लगेगा। अपने सम्पूर्ण कर्मों में सर्वारंभपरित्यागी होकर, दूसरों के काज सँवारने में वह अपनी पूर्ण शक्ति लगा देगा।

दिनचर्या में व्यवहार

शास्त्रों राही सच्चा ज्ञान मिला, परंतु उस ज्ञान को यदि विज्ञान में परिणत नहीं किया तो सारा एकत्रित किया हुआ ज्ञान व्यर्थ ही है। पूर्ण जीवन को यज्ञमय बनाने हेतु ही यह ज्ञान हमारा पथ-प्रदर्शक बनता है। हर गुण और स्वभाव से बँधे व्यक्ति को उसकी समझ के अनुकूल राह दिखाता है। मनोवृत्तियाँ ही वह लकड़ी हैं जो जग रूप हवन कुंड में डाली जाती है। उनकी तपिश ही उसे यह बताती है, 'भगवान तू ही तू, मैं नहीं। मेरा किया कछु न हो।' साधक पल पल पर यही प्रार्थना ले कर जीता है। वह हर कर्म कर्तव्य रूप में निभाता है, हर परिस्थिति को 'तेरा भाणा मीठा लागे' कह कर शिरोधार्य करता है।

इस प्रकार उसके मनोकर्म पावन होने लगते हैं, मन शांत हो जाता है और संस्काराशय शुष्क होना आरम्भ हो जाता है। उसे पूर्ण जग भगवान की लीला दिखने लगती है। यानि साधक की दृष्टि 'मैं' से उठ कर स्वरूप में टिकने लगती है। इस प्रकार समर्पित जीव समष्टिगतता को प्राप्त हो जाता है। 'मैं' ही तो इक बाधा है.. जिस ने स्वरूप से बिछुड़न करवाया है।

यदि मोह और काम की बेड़ियाँ राह से हट जाएँ तो जो मिला सो मिल गया, फिर जीव को सर झुका कर हर परिस्थिति का स्वागत करना सहज हो जाएगा। फिर निरन्तर कर्त्तव्य निभाव ही उसकी जीवन प्रणाली बन जायेगी।

इस यज्ञ में शेष केवल अमृत ही प्रसाद रूप में प्राप्त होगा, जिस में अहं भरी सब मनोवृत्तियाँ एक एक करके डूब जायेंगी। यह महा पावनी कर्म प्रवाह बाह्य प्रज्ञता के प्रति उदासीन हो जायेगा।

यज्ञ शेष के हर ग्रास की महिमा अपरंपार है। जितना कहें उतना ही कम है। यह तो मानो भगवान के अपने भोजन की परोसी हुई थाली में से ही एक ग्रास की चोरी है।

यहाँ अर्पणा में परम पूज्य माँ की छत्रछाया में रह कर हमें जीवन में जो पदचिन्ह प्राप्त होते हैं, उन को देख कर तथा अनुभव कर के हम केवल अपने भाग्य को ही सराह सकते हैं। दैवी देन परम पूज्य माँ को पा कर धन्य धन्य कह कर केवल सर ही झुका सकते हैं, जिन्होंने हमें वास्तव में जीना सिखाया, अन्यथा जीवन व्यर्थ ही चला जाता। ❖

समाधि स्थित तथा स्थितप्रज्ञ..

अर्जुन ने भगवान से आत्मवान तथा अचल समाधि में स्थित बुद्धि की बातें सुनी और यह भी सुना कि अचल समाधि के पश्चात् वह योग में स्थित हो जायेगा। इस कारण उसके मन में स्थितप्रज्ञ के चिन्ह जानने की चाहना उत्पन्न हो गई और वह भगवान से पूछने लगे :

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्।।

श्रीमद्भगवद्गीता - २/५४

शब्दार्थ :

१. **हे केशव!**
२. **समाधि स्थित तथा स्थितप्रज्ञ पुरुष के क्या लक्षण हैं?**
३. **स्थित बुद्धि वाला पुरुष,**
४. **कैसे बोलता है, कैसे बैठता है, कैसे विचरता है?**

तत्व विस्तार :

देख नन्हीं! ध्यान से देख!

अर्जुन समाधि में स्थित की बातें पूछ

रहे हैं। वह नित्य समाधि स्थित, स्थितप्रज्ञ की बातें पूछ रहे हैं। वह पूछते हैं, 'हे कृष्ण! ये समाधि स्थित लोग, जो स्थितप्रज्ञ होते हैं ये :

१. कैसे बोलते हैं?

२. कैसे बैठते हैं?

३. कैसे चलते हैं?

इसे ध्यान से समझ!

अर्जुन की प्रचलित मान्यता के अनुसार आसन लगा कर ध्यान मग्न होकर जो बैठ जाते हैं, उन्हें ही वह समाधि स्थित समझते होंगे। अर्जुन को मानो भगवान की बात समझ नहीं आई।

एक ओर भगवान अर्जुन को युद्ध करने के लिये कहते हैं, दूसरी ओर उसे बता रहे हैं कि योग में स्थित कैसे होना है, फिर वह समाधि की बातें करते हैं। उन सबका मिलन कैसे हो?

समाधि स्थित भी हो, आत्मवान योग स्थित भी हो, स्थितप्रज्ञ भी हो, युद्ध भी करे और उसे पाप भी न लगे, वह कर्म बन्धन से मुक्त भी हो जाये, इन सब बातों का समन्वय कैसे हो? इन सब बातों के विरोध का अभाव कैसे हो? इन सब बातों का मिलन कैसे हो?

इस कारण भगवान से अर्जुन पूछते हैं कि :

समाधिस्थ कैसे बोलते हैं?

समाधिस्थ कैसे बैठते हैं?

समाधिस्थ कैसे चलते फिरते हैं?

नन्हीं! जो लोग एकान्त में मौन बैठ कर दुनिया को भूल जाने को समाधि मानते हैं उनके लिये यह सब बातें विरोधात्मक सी दिखती हैं। वे समझते हैं कि :

१. समाधि में चलना फिरना, बोलना, काम करना इत्यादि ये सब क्रियायें नहीं हो सकतीं।

२. अध्यात्म में तथा समाधि में स्थित लोग युद्ध नहीं कर सकते।

३. आत्मा में तथा योग में स्थित लोग कोई काम नहीं कर सकते।

४. जिन कर्मों को संसार ग़लत कहता है, आत्मा में योग स्थित वह कर्म नहीं कर सकते।

परन्तु यह केवल मिथ्या भ्रम है। भगवान ने कहा :

१. 'आत्मवान योगी कर्मों में कुशल और दक्ष होते हैं।' (२/५०)

२. 'बुद्धि युक्त योगी पाप पुण्य से परे होते हैं।' (२/५०)

३. 'तू योग में स्थित होकर कर्म कर!' (२/४८)

४. 'यदि तेरी बुद्धि मोह से तर जायेगी तो तू सुने हुए और सुनने योग्य से नित्य अप्रभावित रहेगा।' अर्थात् जब तेरी बुद्धि सुने हुए श्रुति प्रतिपादित ज्ञान से भी अप्रभावित होगी, तब तू अचल बुद्धि को पायेगा। (२/५२)

इन सबसे पता लगता है कि :

क) यह समाधिस्थ कर्म भी करता होगा।

ख) यह समाधिस्थ पाप और पुण्य भी करता होगा।

ग) यह समाधिस्थ बातें भी सुनता होगा।

घ) यह समाधिस्थ श्रुति और विप्रति से भी अप्रभावित होगा।

यह बात अर्जुन को अजीब लगी। इस कारण उसने पूछा कि समाधिस्थ यदि ये सब कुछ करते हैं तो कैसे करते हैं? आप उनके चिन्ह तो बताईये।

श्री भगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।

श्रीमद्भगवद्गीता - २/५५

भगवान अर्जुन को स्थिर बुद्धि, नित्य समाधिस्थ के चिन्ह बताते हुए कहने लगे :

शब्दार्थ :

१. **जब मनुष्य सम्पूर्ण मनोगत कामनाओं का त्याग कर देता है**
२. **और आत्मा में अपने आप में संतुष्ट हो जाता है,**
३. **तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है।**

तत्व विस्तार :

भगवान ने यहाँ पर सम्पूर्ण कामनायें मनोगत कही हैं;

मन :

१. संग मन का गुण है।
२. राग द्वेष मन के गुण हैं।
३. आशा, तृष्णा मन में बसे हुए हैं।
४. संकल्प, विकल्प मन के गुण हैं।
५. मोह ही मन का स्वरूप है।
६. भ्रमपूर्ण मन ही होता है।
७. काम, क्रोध मन में होते हैं।
८. दम्भ, दर्प भी मन में ही होते हैं।
९. विक्षिप्तता, उद्विग्नता और संघर्ष भी मन में ही होते हैं।
१०. योजन, प्रयोजन मन ही रचता और बनाता रहता है।
११. बुरा, भला भी मन ही कहता है।
१२. द्वन्द्व पूर्णता ही उसका स्वरूप है।

परम पूज्य माँ के साथ आश्रम के अन्य सदस्य

१३.भय भी मन का ही गुण है।

१४.तड़प से व्यथित होने वाला मन ही है।

१५.जहाँ रुचि हो, वहाँ राग करने वाला भी मन ही है।

१६.जहाँ अरुचि हो, वहाँ द्वेष करने वाला मन ही है।

१७.विषयों में मन ही प्राण भरता है।

१८.राग द्वेष पर आधारित कामना मनोगत ही होती है।

१९.मन में ही यह कामना केन्द्रित है।

२०.मन के कारण ही बुद्धिहीनता उत्पन्न होती है और नित्य बढ़ती रहती है।

२१.जब यह मन सत् असत् को नहीं देख सकता, यह अन्धा ही होता है।

२२.रुचि अरुचि पर आश्रित जो मन है, वह विषयों के आश्रित होता है और विषय जड़ होते हैं।

जब कामना का नितान्त अभाव हो जाये तब :

क) कामना के केन्द्र मन से संग नहीं रहेगा।

ख) मन पर बुद्धि का राज्य हो जायेगा।

ग) बुद्धि मनोगुण से प्रभावित नहीं होगी।

घ) जीवन रुचि प्रधान नहीं होगा।

ङ) जब हम मनोकुल (मन+इन्द्रियों) से विमुख हो जायेंगे, तब बुद्धि नित्य अप्रभावित रहेगी।

मनोकुल जिसने छोड़ दिया, वह बुद्धि बल अपनायेगा। तत्पश्चात् बुद्धि निर्णय के परायण होकर वह बुद्धि के निर्णय को अपने जीवन में उतार सकेगा।

बुद्धि :

बुद्धि ने जाना कि :

१. मैं आत्मा हूँ।

२. मैं तन ही नहीं हूँ।

३. तन माटी है।

४. तन माटी में मिल जायेगा।

५. मन झूठा है और मुझे अनित्य की ओर ले जाता है।

६. मैं मन ही नहीं हूँ।

बुद्धि पाप विमुक्ति की राह भी जान गई और बुद्धि ने विमुक्त करा ही दिया मन के मिथ्या संसार से। फिर संग मोह पल में छूट जायेंगे। बुद्धि का जब राज्य हुआ तो रुचि अरुचि का राज्य मिट जायेगा और मिथ्यात्व त्यज कर जीव पल में सत् पथ पथिक बन जायेगा। साधक तब आत्मवान बन ही जायेगा।

नन्हीं! फिर से समझ! जब जीव मन से ही संग छोड़ देता है, वह मन के अन्तर्गत सम्पूर्ण गुणों से भी संग नहीं करता।

जब आप अपने तन को ही अपना नहीं मानोगे तब :

क) आप किस के लिये कोई कामना करोगे?

ख) आपका मन नितान्त शान्त हो जायेगा।

ग) आप अपनी आत्मा के तद्‌रूप हो जाओगे। आत्मा का तो कोई नाम या रूप नहीं होता, आप भी नाम तथा रूप से रहित हो जाओगे।

घ) तन के सुख दुःख से आप तद्‌रूपता छोड़ दोगे। आत्मा तो दुःख सुख से है ही परे।

ङ) आप अपनी आत्मा के तद्‌रूप हुए अपने आप में संतुष्ट रहोगे।

अब इसे दूसरे दृष्टिकोण से समझ ले :

१. जब आप दूसरों पर आश्रित नहीं रहेंगे, तब आप अपने में ही प्रसन्न रहेंगे।

२. फिर लोग जो भी करें, आपको फ़र्क़ नहीं पड़ेगा।

३. आत्मा से तद्‌रूपता हो जाये तो जग जो भी करे; आप पर उसका कुछ भी असर नहीं होता।

४. आत्मा से तद्‌रूपता ही नित्य आनन्द में स्थिति है।

५. आत्मा में स्थिति ही आपको नित्य निर्विकार बना सकती है।

६. आत्मा में स्थिति नित्य आत्म संतुष्टि है। फिर कोई अपना बने या न बने, आपको कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। आपकी पराश्रितता का नितान्त अभाव हो जाता है।

नन्हीं! यह स्थिति पल में मिल जायेगी यदि :

क) बुद्धि आत्मा के तद्‌रूप हो जाये।

ख) बुद्धि अपने आपको तन न मान कर आत्मा मानने लगे, यानि देहात्म बुद्धि का पूर्णतयः अभाव हो जाये।

इसका अभ्यास भी यही है कि जीवन में अहर्निश सब कुछ करते हुए जीव निरन्तर इसी भाव में रहे कि वह तन नहीं है, वह आत्मा है।

मेरी नन्हीं सी लाडली! सम्पूर्ण साधना तथा शास्त्र, या विभिन्न विधियों की साधना प्रणाली की पराकाष्ठा यही है। यह स्थिति पाने में आपने कितने जन्म या वर्ष लेने हैं या पल में ही इसे जीवन में मान लेना है, यही आपकी रज़ा।

साधना- व्यावहारिक तथा मानसिक स्तर पर :

परम पथ पथिक नन्हीं आभा! जो सच ही आत्मा में स्थित होना चाहता है, वह तो भगवान से कहेगा कि :

१. मैं आत्मा हूँ तन नहीं, यह तन तुम्हारा चाकर है।

२. चाकर की भी बात नहीं, यह तो बस तुम्हारा ही है।

३. अब इस तन को जो भी हो मुझे नहीं सब तुझे हुआ है।

४. अपमान मिले या मान मिले, मुझे नहीं सब तुझे मिला है।

५. कोई पांव तले कुचले या आसन दे, यह मुझे नहीं सब तुझे मिला है।

६. कोई ठुकरा दे या अपना ले, जो करे वह तूने किया है।

७. जब तन ही तुम्हारा हो गया, तो तन को जो भी हुआ वह तुझे हुआ।

८. संत मिला या दुष्ट मिला, जो भी मिला वह तुझे मिला।

९. अरि मिला या मित्र मिला, वह भी तुझको ही मिला।

१०. राग द्वेष सारे गये, यह मन भी तुम्हारा हो गया।

११. दुःख सुख जो भी इसे मिले, वह भी तुझे ही मिल रहे हैं।

१२. सब नाते-रिश्ते तुम्हारे हुए, मेरा मन ही जब नहीं रहा।

१३. जो भी करो इस तन की राह, वह कर्म तुम्हारा हो गया।

नन्हीं! जब तुम तनत्व भाव अभाव का अभ्यास करना आरम्भ करोगी तब तुम्हारा यही दृष्टिकोण हो जायेगा। इसका आरम्भ भी यही है, अन्त भी यही है। अब तुम्हें यह देखना है कि भगवान तुम्हारी

जगह होते तो क्या करते?

जब तक साधक तनत्व भाव अभाव में स्थिति नहीं पा लेता, तब तक वह :

क) परिस्थितियों से अप्रभावित रहने के प्रयत्न करता है।

ख) लोगों के गुणों से और अपने गुणों से भी अप्रभावित रहने के प्रयत्न करता है।

ग) अपने कर्मों के फल को भगवान पर छोड़ने के प्रयत्न करता है।

घ) निष्काम कर्म करने के प्रयत्न करताहै।

ङ) दैवी गुणों का जीवन में नित्य अभ्यास और अनुसरण करता है।

च) नित्य कर्तव्य परायण रहता है।

छ) लोगों के काम निष्काम भाव से दक्षता पूर्ण करता है।

ज) जो सत्य पर हो, उस इन्सान का संरक्षण करता है।

झ) हर पल औरों को स्थापित करने के प्रयत्न करता है।

ण) सब कुछ करता हुआ भी वह किसी पर एहसान नहीं करता।

ट) सब कुछ करता हुआ भी वह किसी से कृतज्ञता की माँग नहीं करता।

ठ) जैसा भी काम उसे मिल जाये, उसे वह पूर्ण चित्त लगा कर अतीव दक्षता से करता है।

नन्हीं! सब करते हुए भी वह अपना ध्यान निरन्तर इसी भाव में रखता है कि वह तन नहीं है, उसका तन भगवान का है। जब वह नाम भी लेता है तो वह अपने आन्तर में अपना तन अपने नाम वाला नहीं मानता, बल्कि राम का मानता है। सच्चा साधक लोगों से नहीं कहता कि वह राम है। वह लोगों से मान पूर्ण व्यवहार नहीं माँगता।

जब वह इस सब में परिपक्वता पा लेता है, तत्पश्चात् वह आत्मा से आत्मा में संतुष्ट हो जाता है और स्थिर बुद्धि वाला कहलाता है।

तुम पूछती हो 'अध्यात्म अभ्यास तथा साथ ही युद्ध करने को भगवान ने कहा', इसका मिलन कैसे हो?

नन्हीं! साधक कायर नहीं होते, भगवान भी कायर नहीं थे। पहले वह हर तरीके से कौरवों को मनाने के यत्न करते रहे परन्तु जब वह नहीं माने, तब भगवान ने अर्जुन से कहा कि 'तुम युद्ध करो'।

पापी का पाप हरना ही चाहिये, विशेषकर जब वह दूसरों पर अत्याचार कर रहा हो।

१. पापी का पाप ज्ञान से हर लो।

२. पापी का पाप नीति से हर लो।

३. पापी का पाप प्रेम से हर लो।

४. गर इन सबसे कुछ न बने तब तो युद्ध करना ही पड़ेगा।

साधुओं का संरक्षण इसी में है। पापी का उसके अपने पाप से भी संरक्षण इसी में है। ❖

परम पूज्य माँ

अर्पणा
समाचार पत्र

अर्पणा ट्रस्ट, मधुबन,
करनाल, हरियाणा
जून २०२२

अर्पणा आश्रम

आशीर्वाद से परिपूर्ण.. अर्पणा की धरती

९ मार्च १९५८ को परम पूज्य माँ का गहन आध्यात्मिक अध्ययन प्रारम्भ हुआ था, जिसे प्रत्येक वर्ष **साधना दिवस** के रूप में मनाया जाता है। ५ वर्ष तक उनकी दिनचर्या में परम पूज्य माँ के व्यवहार में दिव्यता की झलक पा कर डॉ. जे.के. महता, (जिन्हें परम पूज्य माँ 'गुरु' रूप में पूजते थे) ने उन्हें 'भगवान' के रूप में घोषित कर दिया!

१० अप्रैल को **राम नवमी** का उत्सव मनाया गया है परम पूज्य माँ द्वारा दर्शाई गई भगवान राम के जीवन की दिव्यता से सभी मंत्रमुग्ध हो गये।

इसके उपरान्त, सुश्री विष्णु महता ने परम पूज्य माँ के जीवन की अनेकों दिव्य घटनाओं का उल्लेख किया। श्री कृष्ण अरोड़ा और 'उर्वशी अकादमी' के गायकों के मधुर गायन से मन्दिर का वातावरण दिव्यता से गुँजायमान हो उठा।

१६ अप्रैल, उस दिन की याद लेकर आया, जब २००८ में परम पूज्य माँ **महासमाधि** में लीन हो गये। उनसे विरासत रूप में मिली 'उर्वशी' हमारे लिये एवं सम्पूर्ण मानव जाति के लिये एक ऐसी अमूल्य निधि है जो सबको आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर करती है।

अन्य यादगार लम्हे

१० मई को पूज्य छोटे माँ एवं २२ मई को पूज्य पापा जी की पुण्य तिथि को उन्हें याद किया गया..

हम इन संतों के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं जिनके मार्गदर्शन ने 'उर्वशी' को हमारे हृदयों और जीवनों में आत्मसात करने में हमारी सहायता की।

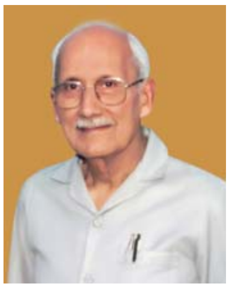

अर्पणा अस्पताल

अर्पणा अस्पताल द्वारा ३ मल्टी स्पेशलिटी चिकित्सा शिविरों का आयोजन किया गया। दिल्ली, करनाल और अर्पणा अस्पताल के विशेषज्ञों द्वारा न्यूरोलॉजी, हेमेटोलॉजी, सर्जरी, ऑटोलरींगोलॉजी, नवजात शिशु रोग आदि के लिये रोगियों की जाँच की गई जिसमें अर्पणा के सभी कार्यकर्ताओं का विशेष योगदान रहा।

६ मार्च को अर्पणा अस्पताल में डॉ. जे.के. महता की पावन स्मृति में एक मेडिकल कैंप का आयोजन किया गया। इसमें लगभग ५०० मरीज़ों की जाँच की गई।

३ अप्रैल को **अर्पणा अस्पताल में एक अन्य शिविर** आयोजित किया जिसमें विशेषज्ञ चिकित्सकों द्वारा १३९ रोगियों की जाँच की गई।

डॉ. बैजनाथ भंडारी की पुण्य स्मृति में १ मई को अर्पणा अस्पताल में एक अन्य मेडिकल कैंप का आयोजन किया गया जिसमें विशेषज्ञ चिकित्सकों द्वारा लगभग १०० रोगियों की जाँच की गई।

डॉ. मोहित गोयल, न्यूरोलॉजिस्ट, (बत्रा अस्पताल, नई दिल्ली से), मरीज़ की जाँच करते हुए

नेत्र शिविर : दिसम्बर २०२१ से, हमारे आसपास के गाँवों में हर महीने १० नेत्र शिविर आयोजित किये जा रहे हैं जहाँ लगभग हर माह १२०० मरीज़ आते हैं।

हरियाणा

एसएचजी महिलाओं का तो मानो सपना साकार हो गया!

अर्पणा के स्वयं सहायता समूह कार्यक्रम की ३० महिलाओं और फील्ड वर्करों का ऋषिकेश जाने का सपना सच हुआ।

१९-२१ अप्रैल तक उनके भ्रमण का आयोजन अर्पणा द्वारा सुविधा प्राप्त एसएचजी संघ द्वारा किया गया।

समूह में आरती, भजन एवं गंगा में तैरते दीयों द्वारा भक्तिपूर्ण माहौल बन गया। उन्होंने वहाँ पर एकत्रित जनसमुदाय के लिये २ लघु नाटकीय प्रस्तुतियाँ दी - 'प्रोटेक्शन अगेंस्ट कोविड' और 'क्लीनिंग द गंगा'। उन्होंने प्रसिद्ध मन्दिरों का भ्रमण भी किया तथा गंगा जी में स्नान करके गंगा माँ की पवित्रता का अनुभव किया।

परमार्थ आश्रम में सहज नृत्य

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को समर्थन देने के लिए इंडिया डेवलपमेंट एण्ड रिलीफ फंड (यूएसए), फ्रेंडज़ ऑफ कल्पना एंड जयदेव देसाई (यूएसए), टाइड्ज़ फाउंडेशन (यूएसए) और अर्पणा ग्वेर्नज़े को हमारी गहरी कृतज्ञता!

दिल्ली में अर्पणा के शिक्षा कार्यक्रम

कैरियर परामर्श

कक्षा १०-१२वीं के वरिष्ठ छात्रों के लिये कैरियर परामर्श सम्बन्धित सत्र आयोजित किये गये। हमारे एक साथी एनजीओ से डॉ. मलिका नन्दा, अंतर्राष्ट्रीय स्तर की एक योग्य कैरियर काउंसलर, द्वारा छात्रों के साथ एक ऑनलाइन और एक ऑफलाइन सत्र आयोजित किये गये।

डॉ. मलिका नन्दा छात्रों को परामर्श देते हुये

मानसिक स्वास्थ्य पर कार्यशाला

महामारी से छात्रों में बहुत चिंता एवं तनाव व्याप्त है।

छात्रों को उनकी भावनाओं को संभालने में सहायता करने के लिये, एक मनोवैज्ञानिक एवं प्रमाणित कला चिकित्सक, सुकृति शर्मा, और सृष्टि बिष्ट, M.Sc, B.Ed., ने निम्नलिखित उदेश्यों के साथ वरिष्ठ छात्रों के लिये मानसिक स्वास्थ्य पर परामर्श देने के लिये एक सत्र आयोजित किया।

- मानसिक स्वास्थ्य
- भावनात्मक चरणों की पहचान
- भय, चिंता और तनाव को दूर करने के उपाय
- आन्तरिक आत्म संतुलन
- आत्म-प्रेम

अंजलि, अनपेक्षित अधिवक्ता

५ साल की अंजलि जब पहली कक्षा में थी तब अर्पणा ट्रस्ट शिक्षा केन्द्र में उसे भर्ती कराया गया। वह कहती हैं, “यहाँ शिक्षक बहुत सहायक हैं और वे हमेशा छात्रों को अध्ययन के लिये प्रोत्साहित करते हैं। जब शकुंतला मैम ने १२वीं कक्षा में मुझसे पूछा था कि मैं क्या बनना चाहती हूँ, मैंने जवाब दिया कि मुझे वकील बनना है। उस समय सभी कक्षा के बच्चे मुझ पर हँसे, पर मैम ने हमेशा मेरा साथ देने का संकलप लिया।” सीबीएसई में ७९% प्राप्त करके, उसने पहले ही प्रयास में एलएलबी की प्रवेश परीक्षा सफलतापूर्वक पास की।

अर्पणा ने उसकी भावनात्मक और आर्थिक दोनों तरह से मदद की और इस प्रकार उसने अखिल भारतीय बार काउंसिल का इम्तिहान पास किया। अब वह साकेत कोर्ट, नई दिल्ली में वकील के पद पर रत है।

अर्पणा अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में सहयोग देने के लिए एस्सेल फाउंडेशन, नई दिल्ली, अवीवा पीएलसी, यूके, केयरिंग हैंड फॉर चिल्ड्रेन, यूएसए एवं अर्पणा कनाडा का अत्यन्त आभारी है।

हिमाचल प्रदेश

फसलों को बचाने के साथ साथ जंगली जानवरों का संरक्षण!

ज़ू आउटरीच संगठन कोयंबटूर द्वारा ६ मई को अर्पणा के गजनोई केन्द्र में, एक दिवसीय कार्यशाला आयोजित की गई जिसमें ३२ महिलाओं और पुरुष किसानों ने भाग लिया।

इस बात पर सबने सहमति प्रकट की कि वनों की कटाई और उनका अतिक्रमण, वन्य जंगली जानवरों द्वारा फसलों की क्षति का कारण बनते हैं।

ज़ू टीम ने सुझाव दिया कि किसान जंगलों से सटे क्षेत्र में फलदार पेड़ लगाएं, जिससे जंगली जानवर फल खायेंगे और उनकी फसलों को तबाह नहीं करेंगे।

३२ पुरुष और महिला किसान चिड़ियाघर संगठन टीम को मंत्रमुग्ध सुनते हुये (टीम में शामिल हैं डॉ. संजय मोलूर, कार्यकारी निर्देशक, श्रीमती पायल मोलूर, शिक्षक और स्वयंसेवक उषा, रवींद्र, अर्पण, जोशी और विशाल आहूजा)

इस संगठन ने अर्पणा के माध्यम से निःशुल्क फलों के पेड़ देने की पेशकश की, जिसके लिये सभी किसान उत्साहपूर्वक सहमत हो गये।

हिमाचल प्रदेश में स्वास्थ्य और विकास कार्यक्रमों के अनुदान के लिए टाइड्ज़ फाउंडेशन (यूएसए), बैजनाथ भंडारी पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट (नई दिल्ली) और अर्पणा ग्वेर्नज़े को हमारी गहरी कृतज्ञता!

It is Your compassionate support that sustains Arpana's Services!

Arpana Trust and Arpana Research & Charities Trust are both approved under Section 80G of the Income Tax Act, 1961, giving 50% tax relief for donors in India.

FCRA Registration No. for Arpana Trust is 172310001

FCRA Registration No. for Arpana Research & Charities Trust is 172310002

Send your contribution for dissemination of humane values & medical and community welfare services in Delhi to:

Arpana Trust, Madhuban, Karnal, Haryana 132037

Send your contributions for health & development services in Haryana & Himachal to:

Arpana Research & Charities Trust, Madhuban, Karnal, Haryana 132037

Send contributions in USA to:

Mr. Vinod Prakash, President, IDRF, 5821 Mossrock Drive, North Bethesda, MD 20852

Mr. Jagjit Singh, AID for Indian Development, 84 Stuart Court, Los Altos, CA 94022-2249

Send contributions to Arpana Canada:

c/o Mrs. Sue Bhanot, 7 Scarlett Drive, Brampton, Ontario L6Y 3S9, Canada

Please let us know by email or telephone, whenever you transfer funds to Arpana.

Information & Resources Office: 91-184-2390905 **Executive Director:** 91-9818600644

emails: **at@arpana.org and arct@arpana.org**

Contact person: Mrs. Aruna Dayal, Director Development. Mobile 91-9991687310

Websites: **www.arpana.org** **www.arpanaservices.org**